UGC Approved Journal
Research Link
Since March 2002
An International, Registered & Referred Monthly Journal : Hindi Literature
Research Link - 166, Vol - XVI (11), January - 2018, Page No. 103-105
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

साहित्य और समाज में नारी के प्रति बदलता दृष्टिकोण

प्रस्तुत शोधपत्र में साहित्य और समाज में नारी के प्रति बदलते दृष्टिकोण पर विचार किया गया है। भारतीय साहित्य और समाज के इतिहास में नारी के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन होता रहा है। कुछ विद्वान मानते हैं कि वैदिक काल में नारी को पुरुष के समान ही अधिकार प्राप्त थे। शिक्षा, विवाह व सम्पत्ति के सम्बंध में उन्हें समान अधिकार और सम्मान प्राप्त था। मध्ययुग में स्त्रियों की इस सम्मानजनक स्थिति को आघात लगा और नारी सम्मान के लिए संघर्षरत दिखाई दी। आधुनिक काल में नारी की स्थिति में अंतर आया और समकालीन भारतीय समाज में तो नारी, पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर कार्य कर रही है।

डॉ.डी.एस.भण्डारी

वर्तमान भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति सम्मान जनक मानी जा सकती है, लेकिन दिनों–दिन बढ़ते आधुनिकता के दबावों ने औरत को उसके अधिकारों के विषय में तो जागृत कराया, किन्तु एक नये प्रकार का स्त्री शोषण भी अस्तित्व में आ गया है। पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण की कीमत भी हमें चुकानी पड़ रही है, इसका परिणाम यह हुआ कि औरत को आज भारतीय समाज में शरीर के रूप में परोसा जा रहा है। आज भी औरत को अबला के दृष्टिकोण से देखा जाता है। औरत के नाम से जो निरीह काया जेहन में आती है, उसे बदलने की आवश्यकता है। भले ही आज जीने का ढंग बदल गया हो, लेकिन परंपराएँ नहीं बदली हैं। आधुनिकता ने भले ही उन्हें नया आवरण पहना दिया हो, मगर उनके अदंर की वास्तविकता भी किसी से छिपी नहीं है। मणिमाला के इस कथन का उल्लेख कई आलोचक करते हैं। उन्होंने लिखा है कि, "परंपरा में हमने सीता को आदर्श माना, आज भी हम हर औरत से सीता होने की अपेक्षा करते हैं, सीता एक परंपरा बनकर जिंदा है। सीता को एक औरत के रूप में हमने जिन्दा नहीं रखा, क्योंकि ऐसा करना पुरूष प्रधान समाज के लिए संभव भी नहीं था। सीता का संपूर्ण व्यक्तित्व केवल यौन शुचिता तक नहीं सिमटा था, वह हमने समेटा है।"[1]

सबसे बड़ी समस्या यह है कि स्त्री अपनी भूमिका स्वयं तय नहीं करती है, वरन् उसकी भूमिका को हमेशा या तो समाज तय करता है या ताकतवर पुरूष तय करता है। बस इसी स्थिति के कारण वह समाज में पुरूष की बराबरी नहीं कर सकती है। स्त्री को पूर्वकाल में कम स्वतंत्रता प्राप्त थी, परन्तु वह अधिक सुरक्षित थी। आज स्थिति यह है कि स्त्री की स्वतंत्रता में वृद्धि हुई है, लेकिन वह पूर्व से अधिक असुरक्षित हो गई है। अब नारी अपनी स्वतंत्रता की कीमत अपनी सुरक्षा से चुका रही है। दोनों दशाओं में नारी की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ है। भारतीय समाज ने स्त्री को "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता" कहकर देवी के पद पर आसीन किया, परन्तु उसके साथ दासी जैसा व्यवहार करते रहे और उसे सम्पूर्ण जीवन पुरूषों की सेवा के लिए बाध्य कर दिया। **श्रीमती सरला दुआ** कहती हैं कि, "एक ओर समाज उसके पाद पदमों में अपनी मुकटमणियों को बिछा देता है, वह सर्वाधिक पूज्य मानी जाती है, वह देवी की महिमा से मंडित होती है। दूसरी ओर उसके जन्म लेते ही उसके माता–पिता चिन्ताग्रस्त हो जाते हैं, पुत्र के समान उसे प्यार नहीं मिलता है तथा जीवन को सुखी व समृद्ध बनाने वाले अन्य साधनों से वह वंचित हो जाती है। नारी जीवन में चांचल्य, सकुमार, सौन्दर्य तथा अन्य उदात्त गुणों की भूमिका का निर्माण उसके कन्या रूप में ही होता है।"[2] वर्षों तक स्त्री की समस्याओं पर किसी का भी कोई ध्यान नहीं गया। पुरूष से भिन्न उसकी समस्याओं का आकलन नहीं किया जाता था। पराधीनता उसके जीवन की कहानी थी और एक समय ऐसा आया कि इस पराधीनता ने उसका मानस भी पराधीन कर दिया। स्त्री को पुरूष का गुलाम बनाने में धर्म ने भी योगदान दिया है। बौद्ध व जैन धर्म में यह प्रचारित किया गया कि स्त्री को मोक्ष नहीं मिलता है। साधना के द्वारा उसे पुरूष योनि प्राप्त होती है और यदि वह साधना करती रहे, तभी उसे मुक्ति मिलती है। इस प्रकार से एक धार्मिक समाज में उसे दूसरे दर्जे का नागरिक माना जाने लगा।" स्त्री पुरूष का ऐसा उपनिवेश रहा है, जिसे अपने वश में करने के लिए पुरूष को अधिक मेहनत नहीं करनी पड़ी है। गृहस्थी को मन्दिर मानने के लिए विवश किया जाने लगा और उसके लिए एक प्रकार से एक अस्थाई जेल की व्यवस्था कर दी गई।"[3] हिन्दी साहित्य के रीति काल में स्त्री को दरबारों की शोभा माना जाता था, नारी के रूप सौन्दर्य को लक्ष्य करके ही

विभागाध्यक्ष (हिन्दी विभाग), बालगंगा महाविद्यालय, सेन्दुल केमर, टिहरी गढ़वाल (उत्तराखण्ड)

कविगण रचनाएँ करते थे, कुछ विद्वान मानते हैं कि सामंती युग में स्त्री की दासता और पराधीनता अपने चरम पर थी। स्त्री को पुरूष की सम्पत्ति माना जाता था यह सोच कभी समाप्त नहीं हो पाई है। "स्त्री, पुरूष की संपत्ति है, उसकी इज्जत है, इसलिए उस पर हाथ डालना शत्रु पुरूष को या विपक्षी पुरूष वर्ग को नीचा दिखाना है, यह सोच किसी भी जनतंत्रीय समानाधिकार और नारी जागरण की भावना से मेल नहीं खाती है।"[4]

पूंजीवादी समाज में भी स्त्री की स्थिति में विशेष परिवर्तन नहीं दिखाई देता है, धनिकों की स्त्री पैसों से खेलती हुई दिखाई देती है और दूसरे वर्गों की पैसों के लिए खेलती हुई। पैसे को पाने के लिए पैसे के हाथ बिकने को वह मजबूर दिखाई देने लगती है। कुल मिलाकर भोग और विलास की वस्तु से वह अलग अपनी छवि नहीं बना पाई थी। "प्रेम की भावना वात्सल्युक्त मातृत्व, त्याग और आदर्श का निर्माण, नवीन दिशाओं का निर्माण, नवीन दिशाओं का दर्शन, पारिवारिक सुख सन्तोष से दूर हटाकर नारी को पूंजीवाद के हाथों में खिलौना बना दिया गया।"[5] पूंजीवाद का विरोध करने पर मार्क्सवादी समाज की स्थापना पर भी स्त्री की स्थिति में कोई सुधार नहीं आया। यद्यपि मार्क्सवादी विचारक यह चिंता अवश्य करते थे कि स्त्री का अपना कोई अस्तित्व नहीं है, उसे भोग और विलास की वस्तु माना गया है। स्त्री समाज में केवल किसी की बहिन बेटी, माँ, पत्नी के रूप में ही अपनी पहचान रखती है।

समाज में अधिकांश ऐसे विचारक हैं, जो यह मानते हैं कि घर, परिवार, समाज की मर्यादा की डोर स्त्री से बंधी हुई हैं, जो उसकी निर्धारित मान्यताओं के बाहर कदम रखते ही टूट सकती है, लेकिन कुछ विचारक मानते हैं कि यह विचारधारा जिसने सदियों से अपनी व्यस्वथा की जंजीरों में स्त्री को बांध कर रखा, और स्त्री को निर्जीव बना दिया है। साहित्य समाज का दर्पण कहा जाता है और स्त्री की दशा का चित्रण भी हिन्दी साहित्य में इसी उक्ति को चरितार्थ करता है। हिन्दी साहित्य के आदिकाल से आधुनिक काल तक नारी को केन्द्र में बनाये रखने के लिए साहित्यकार प्रयासरत दिखाई देते हैं। प्रत्येक देश के साहित्य में स्त्री के विविध चारित्रिक पहलू दिखाई देते हैं। दो समाजों या दो देशों में स्त्री के प्रति एक समान दृष्टिकोण नहीं दिखाई देता है। दो साहित्यकारों की दृष्टि भी इसी प्रकार अलग अलग दिखाई देती है। समाज में कुछ धूर्त लोग साहित्यकारों के वाक्यों का उपयोग नीति वचनों की तरह या वेद वाक्यों की तरह करते हैं व समाज से दीर्घकाल तक उनका पालन करने की अपेक्षा करते हैं। वैदिक साहित्य में कहीं भी कन्या का पुत्र की भांति संस्कार करते हुए नहीं दिखाई गया है। इसका अर्थ यह हुआ कि वैदिक काल में भी कन्या होने पर किसी प्रकार से कोई संस्कार सम्पन्न नहीं किया जाता था। स्त्री के प्रति भेद भाव का आरम्भ यहीं से होता है। इस समय तक स्त्री से आशा की जाती थी कि वह अधिक से अधिक पुत्रों को जन्म दे। पितृ सत्तात्मक समाज में शूद्रों के समान ही स्त्रियों को भी वेदाध्ययन से वंचित किया गया था। वैदिक काल के उपरान्त शैव साहित्य में प्रथम बार अवश्य स्त्री को एक शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया। समस्त शिव–पार्वती संवाद के रूप में जो साहित्य है, उस साहित्य में अवश्य नारी की महत्ता स्वीकार की गई है। इसके बाद सूर साहित्य में नारी का स्वतंत्र रूप दिखाई देता है। कबीर काव्य में स्त्री की स्थिति विचित्र है। कबीर स्त्री को माया का स्वरूप मानते हैं। स्त्री को भगवान की प्राप्ति में बाधक माना गया है, क्योंकि वह माया का प्रतिनिधित्व करती है। इसी कारण कबीर उसे त्याज्य मानते हैं। उनका मानना है कि स्त्री ही पुरूष को माया पाश में बांधती है। कबीर काव्य में स्त्री का दूसरा रूप भी दिखाई देता है, जिस स्त्री को कबीर त्याज्य मानते हैं। उसी स्त्री का भेष धारण कर वह भगवान से मिलन की प्रार्थना करते हैं। एक ओर कबीर स्त्री को साधना के मार्ग पर सबसे बड़ा बाधक मानते हैं और दूसरी ओर वह स्वयं को भगवान की प्रियतमा मानते हैं। अब यह विचारणीय विषय है कि जिस स्त्री को वह माया मानते हों और जिस माया का महाठगिनी कहते हो, आखिर ईश्वर की प्राप्ति के लिए उन्हें वही रूप क्यों धारण करना पड़ा। अलौकिक प्रिय के प्रति अपना प्रेम प्रकट करने के लिए कबीर स्त्री के रूपक का ही चुनाव करते हैं। "**डॉ. श्याम सुन्दर दास** सम्पादित विरह को अंग में जो साखियां संकलित हैं। उन सभी साखियों में कबीर ने आत्मा से परमात्मा के अलग होने की पीड़ा को विरहिणी स्त्री की पीडा के मार्मिक स्वरूप में व्यक्त किया है।"[6] अध्यात्म जगत की इस पीडा को अभिव्यक्त करते समय संत कवि कबीर का स्त्री रूप ध्यान आकृष्ट करने वाला है, बहुत दिनों तक प्रियतम की याद में बाट जोहती स्त्री, प्रिय तक न पहुँच पाने में विवश विरहिणी, पथिक से प्रिय का हाल पूछती स्त्री, प्रिय के वियोग में आठों पहर दुख भोगती स्त्री आदि विरहिणी स्त्री के अनेक रूपों का चित्रण संत कबीर दास द्वारा किया गया है।

आधुनिक युग में स्त्रियों को समानता दिए जाने का मूल स्वर जो चारों ओर सुनाई दे रहा है। उसका मूल मन्तव्य पुरूष से समानता व नारी की आर्थिक आत्मर्निभरता से लिया जाता है। नारी परतंत्रता की जो कहानियाँ दिखाई देती हैं। उनमें यह तथ्य दिखाई देता है कि यदि आर्थिक रूप से नारी स्वतंत्र हो जाए तो पुरूष प्रधान समाज का अंकुश उसके उपर कुछ कम हो जाएगा। आर्थिक स्वालम्बन के अभाव मे नारी अपने ही परिवार में शोषित होती रही है और समय के साथ तो आर्थिकता सम्पूर्ण समाज व्यस्थाओं का केन्द्र बिन्दु बनती जा रही है। समाज में नारी के लिए अलग–अलग नियम निर्धारित किए हुए हैं। "विभिन्न मानसिकता के दो मुँह समाज में आज की नारी वस्तु मात्र सम्पत्ति व विनिमय की मूर्ति के रूप में जानी जाती है।"[7] वर्तमान समाज में नारी को मात्र भोग विलास की वस्तु समझने की जो मानसिकता है। इस मानसिकता का विरोध भी अधिकांश विचारकों द्वारा किया गया है। यह तथ्य कहने में सुखद अनुभूति होती है कि स्त्री समाज के अतिरिक्त भी नारी दासता की पीड़ा को कई विचारकों ने अपने विचारों का केन्द्र बिन्दु बनाया है।

नारी मुक्ति या नारी स्वतंत्रता के विचार में पर्याप्त विभिन्नताएँ देखी जा सकती हैं। "पुरूष विरोध करते हुए पुरूष की तरह निरंकुश और स्वछन्द हो जाना नारी मुक्ति नहीं है।"[8] नारी को परिवार में अनेक भूमिकाओं का निर्वहन करना पड़ता है। आज बेटी और बहू में भी भेदभाव किया जाता है, लेकिन विडम्बना देखिये कि बहू के रूप में एक घर में जहाँ वह भेदभाव की शिकार होती है, वहीं दूसरे घर में वह बेटी बन जाती है और इसी प्रकार

का भेदभाव वह दूसरे से करती है। मनुष्य के दिमाग में संकीर्णताओं ने अपना घर बना लिया है, लेकिन आज नारी अपनी स्थिति में सुधार के लिए प्रतिबद्ध दिखाई देती है। उसका आत्मविश्वास बढ़ गया है, अपनी स्थितियों में सुधार के लिए वह एकजुट दिखाई देती है। **चित्रा मुद्गल** के अनुसार "औरत बोनसाई का पौधा नहीं है, जब जी में आया उसकी जड़ों को काट कर उसे दूसरे गमलों में रोप दिया। वह स्वयं को बौना बनाये रखने के लिए विरोध भी कर सकती है।"[(9)] आज साहित्य में बहुत कम स्थानों पर कल्पना के लिए जगह है, अनुभूत सत्य को ही साहित्य में स्थान दिया जाता है। यही कारण है कि साहित्य में नारी की स्थिति का वास्तविक चित्रण मिलता है। नारी की स्थिति में सुधार हो, या कहीं उसकी स्थिति पुरूषों की तुलना में अधिक सुदृढ़ हो ऐसा पुरूष प्रधान समाज स्वीकार ही नहीं कर सकता है। यह स्थिति कार्यालयों में भी देखी जा सकती है। कार्यालय प्रमुख यदि स्त्री है, तो उसके आदेशों को अधिक महत्व नहीं दिया जाता है। 'कीर्तिकया' कहानी में कश्मीरी लाल कहते हैं कि नारी को बेचारी शब्द से आपत्ति है, हर जगह पर औरतों का बुरा हाल है। समाज में कोई दूध का धुला नहीं है। स्त्री को आज भी शूद्र बनाया गया है, वह वस्तु है, वह साधन है, वह गुलाम है और यही कारण है कि वह नारी स्वतंत्रता के अधिकार को समझती है। उसे नारी के लिए बेचारी शब्द के सम्बोधन से आपत्ति है।

संदर्भ :

(1) राजकिशोर, मणिमाला : स्त्री परम्परा और आधुनिकता तक्षशिला प्रकाशन, पृष्ठ 24.

(2) दुआ, सरला : आधुनिक हिन्दी साहित्य में नारी, तक्षशिला प्रकाशन, पृष्ठ 201.

(3) राजकिशोर, मणिमाला : स्त्री पुरुष कुछ पुनर्विचार, पृष्ठ 13—14.

(4) त्रिपाठी, चन्द्रावली : भारतीय समाज में नारी आदर्शों का विकास, पृष्ठ 31.

(5) मित्तल, सुशीला : आधुनिक हिन्दी कहानी में नारी की भूमिकाएँ, पृष्ठ 58.

(6) दास, डॉ0 श्याम सुन्दर : कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ 74.

(7) पुष्पा, मैत्रेयी : बेतवा बहती रही, पृष्ठ 35.

(8) मुद्गल, चित्रा : एक जमीन अपनी, पृष्ठ 25.

(9) मुद्गल, चित्रा : एक जमीन अपनी, पृष्ठ 32.

❁ ❁

UGC - APPROVED - JOURNAL

UGC Journal Details

Name of the Journal :	Research Link
ISSN Number :	09731628
e-ISSN Number :	
Source:	UNIV
Subject:	Accounting;Anthropology;Business and International Management;Economics, Econometrics and Finance(all);Education;Environmental Science(all);Finance;Geography, Planning and Development;Law;Political Science a;Social Sciences(all)
Publisher:	Research Link
Country of Publication:	India
Broad Subject Category:	Arts & Humanities;Multidisciplinary;Social Science

Print

शोध-पत्र भेजने संबंधी नियम

(1) शोध-पत्र **1500-1700 शब्दों से अधिक नहीं** होना चाहिए।

(2) **हिन्दी एवं मराठी माध्यम के शोधपत्रों को कृतिदेव 10** (Kruti Dev 010) में टाईप करवाकर 'पेजमेकर 6.5' में भेजें।

(3) **पंजाबी माध्यम के शोधपत्रों को अनमोल लिपि** (AnmolLipi) या **अमृत बोली** (Amritboli) या **जॉय** (Joy) में टाईप करवाकर 'पेजमेकर 6.5' में भेजें।

(4) अंग्रेजी माध्यम के शोधपत्र टाईम्स न्यू रोमन (Times New Roman), एरियल फोंट (Arial) में टाईप करवाकर 'पेजमेकर 6.5' या 'माइक्रोसाफ्ट वर्ड' में भेजे जा सकते हैं।

(4) शोधपत्र की विधि - (1) शीर्षक (2) एबस्ट्रेक्ट (3) की-वर्ड्स (5) प्रस्तावना/प्रवेश (5) उद्देश्य (6) शोध परिकल्पना (7) शोध प्रविधि एवं क्षेत्र (8) सांख्यिकीय तकनीक (9) विवेचन या विश्लेषण (10) सुझाव (11) निष्कर्ष एवं (12) संदर्भ ग्रंथ सूची।

(6) संदर्भ ग्रंथ सूची इस प्रकार दें -

For Books :

(1) Name of Writer, "Name of Book", Publication, Place of Publication, Year of Publication, Page Number/numbers.

For Journals :

(2) Name of Writer, "Title of Article", Name of Journal, Volume ....., Issue ....., Page Numbers.

Web references :

http://utc.iath.virginia.edu/interpret/exhibits/hill/hill.html

(7) **गुजराती माध्यम** के शोधपत्र **हरेकृष्णा (Harekrishna), टेराफोंट वरुण (Terafont Varun), टेराफोंट आकाश (Terafont Aaksah)** में टाईप करवाकर 'पेजमेकर 6.5' में भेजे जा सकते हैं।

(8) शोधपत्र की साफ्टकॉपी रिसर्च लिंक के ई-मेल आईडी researchlink@yahoo.co.in पर भेजने के बाद हॉर्डकॉपी, शोधपत्र के मौलिक होने के घोषणा पत्र के साथ हस्ताक्षर कर 'रिसर्च लिंक' के कार्यालय को प्रेषित करें।

❁ ❁

UGC Approved Journal
Research Link
Since March 2002
An International, Registered & Referred Monthly Journal : Hindi Literature
Research Link - 166, Vol - XVI (11), January - 2018, Page No. 106-108
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

प्रवासी साहित्यकार सुषम बेदी की कहानियों में सामाजिक यथार्थ

प्रस्तुत शोधपत्र, प्रवासी साहित्यकार सुषम बेदी की कहानियों में सामाजिक यथार्थ को केन्द्र में रखकर लिखा गया है। वरिष्ठ कथाकार रामदरश मिश्र का यह कहना सही है कि प्रवासी साहित्य नये सोच और भारतीय साहित्य को उसकी संस्कृति के साथ अंगीकार करते हैं। यह एक बड़ा कारण है कि हिन्दी साहित्य के परिदृश्य को हमारे अनुभव संसार तथा लेखन के संसार को व्यापक बनाता है। प्रवासी साहित्य और साहित्यकार, भारतीय साहित्य के अंग हैं। वे इसी हवा, पानी, मौसम में पले-बढ़े हैं, इसलिए उनके सोच में भी यही शामिल है और चाहे वो इस समय प्रवासी हों, पर उनके संस्कार, सोच और सामाजिक यथार्थ इसी सांचे में ढला मिलता है। सुषम बेदी की कहानियाँ भी इसी कसौटी पर खरी उतरती हैं।

डॉ.हरदीप कौर

पंजाब के फिरोजपुर में जन्मी, सुषम बेदी आज समकालीन हिन्दी साहित्य में जाना–माना नाम है। दिल्ली विश्वविद्यालय से एम. फिल. तथा पंजाब विश्वविद्यालय से पी.एच.डी की उपाधि प्राप्त कर 1985 से कोंलबिया विश्वविद्यालय, न्यूयार्क में हिन्दी भाषा आकर साहित्य का प्रोफेसर रहीं, सुषम बेदी की अनेक कहानियाँ और उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। इनके प्रमुख उपन्यासों में– हवन, लौटना, नवाभूम की रस कथा, कतरा–दर–कतरा, मैंने नाता तोड़ा, मोर्चे तथा पानी केरा बुदबुदा है तथा चिड़िया और चील तथा तीसरी कसम इनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं।

भौगोलिक और सामाजिक कारणों से अपने मूल निवास स्थान को छोड़कर, अन्यत्र बस जाना प्रवास कहलाता है।''(1) प्रवास, मनुष्य और पशु – पक्षियों की आदिम प्रवृति रही है। पशु–पक्षियों में प्रवास भौगोलिक कारणों से हो सकता है, लेकिन मनुष्यों के प्रवास के पीछे अनेक कारण रहे हैं। उनमें एक मुख्य कारण आर्थिक स्थिति है। व्यक्ति उन्हीं देशों में प्रवास करता है, जिनकी आर्थिक स्थिति उसके मूल देश से बेहतर होती है। प्रवास के इतिहास पर यदि नज़र डाली जाये तो पता चलता है कि पहला प्रवास ज्यूस समुदाय का था, जो 586 ई.पू.में अपना मूल निवास फिलीस्तीन को छोड़कर विश्व के अन्य देशों में जा बसे थे''।(2) आज भी मनुष्य विभिन्न कारणों से अपने देश को छोड़कर विदेशों में बस रहे हैं। इन प्रवासियों में एक बड़ी संख्या भारतीय लोगों की है, जो विभिन्न कारणों से विदेशों में बसे हुए हैं। विदेश में बसे ये लोग एक ओर तो अपनी संस्कृति से जुड़े रहकर उसका विकास का रहे हैं, वहीं उस देश की संस्कृति को अपनाकर 'वसुधैव कुटुबकम्' की अवधारणा को भी सार्थक कर रहे हैं। इन लोगों में एक जमात साहित्यकारों की है, जिन्होंने विदेश को अपनी कर्मभूमि बनाया है। विदेश में बसे ये रचनाकार अपनी रचनाओं के माध्यम से न केवल अपनी पहचान बना रहे हैं, अपितु हिन्दी और हिन्दी साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान भी दे रहे हैं।

अपनी मातृभूमि को छोड़कर परदेश में बसे ये भारतीय, अपनी भाषा में प्रवास की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक और भौगोलिक स्थितियों का चित्रण करते रहे हैं। यह साहित्य उनकी निजी अनुभूतियों से उपजा साहित्य है। प्रवासी मनुष्य की विषमताओं को देखकर प्रवासी हिन्दी लेखक के मन में जो वेदना उत्पन्न हुई, वही उनके साहित्य में दिखाई देती है। विगत कुछ वर्षों से प्रवासी साहित्य और साहित्यकार को लेकर अनेक चर्चाएँ–परिचर्चाएँ होती रही हैं। प्रवासी साहित्य को एक अलग चेहरा देने का प्रयास किया जा रहा है। साथ ही कुछ प्रश्न भी उठ रहे हैं कि क्या प्रवासी साहित्य को अलग खांचे में डालने की आवश्यकता है ? क्या प्रवास का परिवेश चिंतन और सृजन के क्षणों में कुछ वैशिष्ट्य प्रदान करता है, जिससे एक अलग चेहरे का निर्माण हो सके ? इन्हीं कुछ प्रश्नों को लेकर विद्वानों ने अपने मत व्यक्त किए हैं। राजेंद्र यादव प्रवासी साहित्य को दो भागों में बांटते हुए इस साहित्य की अलग पहचान मानते हैं। उनका कहना है कि ''जैसे हम दलितों को, महिलाओं को स्पेस देते हैं, वैसे ही प्रवासी साहित्य को भी स्पेस देनी चाहिए और यह मानकर चलना चाहिए कि यह हिन्दी साहित्य का पैरेरल पार्ट है।''(3) चित्रा मुद्गल का इस संदर्भ में कहना है कि ''प्रवासी भारतीय लेखक जिन समस्याओं से गुजर रहे हैं, उनका चित्रण उनके साहित्य में हुआ है। जिनमें मुख्य समस्याएँ दोयम दर्जे की नागरिकता, नस्लवाद की समस्या, कम तनख्वाह, अस्तित्व की समस्या प्रमुख हैं।''(4)

हिमांशु जोशी का इस विषय में कहना है कि ''भारतीय और प्रवासी साहित्य में अन्तर है और इसको ध्यान में रखकर ही प्रवासी साहित्य के महत्व को स्वीकार करना चाहिए। उनका कहना है कि

सहायक प्राध्यापक, गुरु तेग बहादुर खालसा कॉलेज, दसूहा (पंजाब)

जैसे पानी को फीते से नहीं नापा जा सकता, वैसे ही हर साहित्य को नापने का अलग पैमाना है।''[5]

रामदरश मिश्र'' प्रवासी साहित्य को नयी सोच मानते हुए उसे भारतीय साहित्य का अंग स्वीकार करते हैं। जिसने हिन्दी साहित्य के परिदृश्य को, हमारे अनुभव संसार को तथा लेखन के संसार को व्यापक बनाया है।''[6] वास्तव में प्रवासी साहित्य और साहित्यकार भरतीय साहित्य का ही अंग है, जो प्रवास के यथार्थ को अपनी रचनाओ में व्यक्त कर रहा है। इन साहित्यकारों में सुषम बेदी एक ऐसा जाना–पहचाना नाम है, जिसने अपनी रचनाओं के माध्यम से हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाया है। इनकी सभी रचनाओं में प्रवासियों की मनोवृत्तियों तथा सामाजिक यथार्थ का चित्रण हुआ है।' चिड़िया और चील 'उनका प्रमुख कहानी संग्रह है। जिसमें उनके अनुसार 1978 में प्रकाशित उनकी पहली कहानी 'जमी बर्फ का कवच' से लेकर 1994 में प्रकाशित 'ब्रॉडवे' तक लगभग सभी कहानियाँ शामिल हैं।''[7] उनका कहना है कि ये कहानियाँ बटोही के मन की राह से उठाए गए कुछ क्षण हैं। एक बदले हुए माहौल आकर दुनिया को और उसके ज़रिए अपने आपको समझने की कोशिश है। वस्तुतः विदेशों में बसे भारतीयों का द्वंद्वमय मनःस्थित्यिों को कहानियों के माध्यम से उभारने में सुषम बेदी का हिन्दी साहित्य को विशिष्ट योगदान रहा है।

'चिड़िया और चील कहानी' संग्रह के माध्यम से लेखिका ने प्रवासियों की जिन समस्याओं को उभारा है, उनमें दोयम दर्जे की नागरिकता, अस्तित्व की तलाश, विदेशी संस्कृति का व्यक्तियों और बच्चों पर प्रभाव, विदेशी आवास में नारी की स्थिति, प्रवासियों के प्रति भारतीयों का दृष्टिकोण और नस्लवाद प्रमुख समस्याएँ हैं। लेखिका ने प्रवासी जीवन की सामान्यतर बातों से गहन बात कहने का प्रयास किया है, जो एक साथ दिल तथा दिमाग को छूती है। आज भारतीयों में विदेश जाकर बस जाने की चाहत जिस कद्र बलवती होती जा रही है, वह किसी से छिपा नहीं है। एक सनुहरे भविष्य और नये परिवेश की चाहत लिए हजारों भारतीय विभिन्न देशों में जाते हैं। भारत में रहकर उन्होंने विदेश की रंगीन कल्पनाएँ की होती हैं। उन्हें लगता है कि जो कुछ भारत में रहकर उनके लिए संभव नहीं है, वह सब विदेश में उन्हें आसानी से प्राप्त हो जाएगा, पश्चिमी संस्कृति की चकाचौंध, विदेशी मुद्रा की लालसा, एक अच्छी नौकरी की चाहत, आजाद जिन्दगी के सपने, एक ऐसा स्वप्निल माहौल तैयार करते हैं कि व्यक्ति विदेश जाने और वहां बस जाने के लिए हमेशा लालयित रहता है। अवसर मिलते ही चला भी जाता है। विदेश की भूमि पर उसके सपने जब कठोर सच से टकराते हैं, तो केवल सपने ही नहीं टूटते, व्यक्ति भी टूट जाता है। विदेश आने वाले इन नये लोगों की स्थिति का चित्रण लेखिका की कहानी 'ब्रॉडवे' में हुआ है। ''सब कोई शहर में अच्छी नौकरी की तलाश में आते हैं, हर किसी का मुकाम होता है – एक हरियाले सबर्ब में साफ–सुथरा, सफेद–सा मकान ––––''[8] इस सपने को पूरा करने के लिए दिन–रात भागते रहते हैं, लेकिन जितना वे सपने के पीछे भागते है, सपना उतना दूर हो जाता है। जबकि उसे हर बार लगता है कि सपना बस उनके करीब हैं, इसलिए अपनी चाल भरसक तेज करते हैं, कभी–कभी गिर पड़ते हैं और कभी थककर रुक भी जाते हैं। यह रुके हुए लोग ब्रॉडवे पर आसरा ढूंढ़ते, भीख मांगते नज़र आते हैं, यही इनकी जिंदगी है। जो सफल भी हो जाते हैं, उन्हें भी इसकी कीमत चुकानी पड़ती है। सलोनी भी कहती है कि ''वह हिन्दुस्तान में बैठकर यही सोचती थी कि जिन चाजों के लिए इतना जुगाड़ करना पड़ता है, वे सब इतनी आसानी से मिलेगी। पर कंज्यूमर प्रॉडक्ट्स तो जिंदगी की हर जरुरत को पूरा नहीं करते।''[9]

विदेश में बसने वालों की एक त्रासदी यह है कि वर्षों वहाँ रहने पर भी वहाँ के लोगों के मन में उनके लिए अपनेपन का भाव दिखाई नहीं देता।देखने को हर चेहरा अपना–सा लगता है, हँसता दिखाई देता है, लेकिन अपनापन कहीं नहीं है। सभी एक–दूसरे के करीब आने से जैसे घबराते हैं। अपने को औरों से बचाकर सुरक्षित महसूस करते हैं। बड़े परिवार में पली–बढ़ी, भाई–बहनों के संग हंसती खेलती अनाषा को विदेश में अजीब लगता है। जब वह ''उन ठंडे जमे नकली मुस्कान लिए चेहरों को देखती रहती है और उसे लगता है कि उस ठंड ने उसके भीतर की गर्माहट को भी जमाना शुरू कर दिया है।''[10] इस माहौल में व्यक्ति और परिवार दोनों बिखरने लगे हैं। इस बाहर के शोर ने रिश्तों को संवाद शून्य बना दिया है। एक छत के नीचे रहते हुए भी सभी अन्जान है। वहाँ के मूल निवासियों के लिए यह स्थिति आम है, लेकिन भारतीय मूल के अनीषा जैसे लोगों के लिए यह बेहद दुखदायी है। अनीषा को लगता है कि इस मशीनी सभ्यता में वह स्वयं भी मशीन बन गई है। अनीषा का पति जांमि और उसके बच्चे उस व्यवस्था में पले–बढ़े हुए हैं, इसलिए उस व्यवस्था का हिस्सा हैं। अनीषा के लिए उस व्यवस्था का हिस्सा बनना संभव नहीं है। वह बार–बार महसूस करती है कि वह अपने पति तथा बच्चों को पूरी तरह समझती नहीं है।

इस परदेशी वातावरण में एक मुख्य समस्या बच्चों की है। इस देश की संस्कृति और परिवेश का प्रभाव बच्चों पर इस कद्र हुआ है कि उनमें और माता–पिता में कोई संवाद शेष नहीं रह गया है। वहाँ के परिवेश में पले बच्चे माता–पिता को एक परिवारिक इकाई की दृष्टि से नहीं देखती। उनके अनुसार माता–पिता उन्हें जो कुछ दे रहे हैं, वह उनका कर्तव्य है और बच्चों का हक़। कोई प्यार या अपनेपन का भाव नहीं। आजाद वातावरण ने उन्हें केवल अधिकार का अहसास कराया है। उस अहसास में माता–पिता उनके लिए बेकार की वस्तु बन कर रह गए हैं। चिड़िया और चील कहानी की चिड़िया को मम्मी–डैडी की बातें, उनके अनुभव अपने संदर्भ में इररैलेवेन्ट लगते हैं। ''उनमें एक और जीवन शैली, एक और संस्कृति की बू जिसे चिड़िया अपने लिए पिछड़ा और हानिप्रद महसूस करती है।''[11] इस परिवेश ने चिड़िया को चील बना दिया है। उसे माता–पिता तो फालतू लगते हैं, लेकिन उनके द्वारा दी गई सुविधाओं को वह अपना हक़ समझती है। वह माता–पिता का इस्तेमाल करना सीख गई है। विदेशी परिवेश ने जो हक़ और आजादी बच्चों को दी है, उसके चलते अनुशासन और जिम्मेदारी नाम की कोई चीज़ उनमें नहीं रह गई। प्रवासी भारतीयों के लिए यह स्थिति अत्यंत दुखद है।

परदेश में कुछ पाने की इच्छा और बेहतर जीवन के सपने ने परिवारिक इकाई को तोड़ कर रख दिया है। माँ–बाप दोनों नौकरी –पेशा है, बच्चों के लिए उनके पास समय नहीं है। बेबी सिटर बच्चों

को क्या शिक्षा देगी, किस प्रकार रिश्तों के महत्व को बताएगी? यह तो स्पष्ट ही है। 'झाड़' कहानी की मिसेज सक्सेना को लगता है कि उनके और उनके नाती के बीच कोई संवाद शेष नहीं रहा। वह बहुत कोशिश करती है कि वह अपने नाती के साथ रिश्ता बना सके, लेकिन वह चुप रहता है। ''यहाँ तक की अपने माँ–बाप से उसका कोई गहरा संवाद नहीं है। सिवाय इसके कि माँ–बाप ने उसे जो मर्जी करने की आजादी दे रखी है। इसलिए उनमें टकराहट नहीं होती और ऊपर से सब ठीक लगता है।''(12) अन्विता को भी लगता है कि उसका बेटा उससे अलग है और उसमें अमरीकी होने का गर्व भरता जा रहा है। इसका कारण भाायद उसकी मसरूफियत है। अपने बच्चों के लिए उसके पास समय ही नहीं है। वह क्या सोचता है, क्या सीखता है ? माँ–बाप को पता ही नहीं है। बकौल अन्विता ''उसकी परवरिश पर हमारा कोई बस नहीं है, चाहे कहने को हम उसके माँ–बाप हैं, हमसे ज्यादा जोरदार असर है, यहाँ के वातावरण का।''(13)

प्रवासी भारतीयों ने जहाँ अपने परिवार को खोया है, वहीं आज उनकी मुख्य समस्या अपने अस्तित्व को बनाए रखने की भी है। परदेश में रहते हुए उन्हें हर पल लगता है कि वे वहाँ के नहीं है या उन्हें अहसास करवा दिया जाता है कि वह उस देश के नहीं हैं। वर्षों विदेश में व्यतीत करने के बाद भी वे वहीं अपनाये नहीं जाते, प्रवासी ही कहलाते हैं। इस संदर्भ में नागार्जुन की ये पंक्तियाँ अत्यंत सार्थक प्रतीत होती हैं :

यहाँ पर भी हैं व्यक्ति और समुदाय,
किन्तु जीवन भर भी रहूँ
फिर भी प्रवासी ही कहेंगें हाय! (14)

मिसेज मिलर का यह कथन भी इस सच्चाई को व्यक्त करता है कि वह चाहे जितना भी प्रयास करे, वहाँ के लोग आपको पूर्णतया अपनाते नहीं हैं। आप चाहे कितने भी प्रतिष्ठित पद पर हों, चाहे आप उस देश को अपना मानें, चाहे वहाँ का कितना भी भला सोचे ? उन लोगों की नज़र में आप का स्थान नीचा ही है। आप प्रवासी ही हैं। ''आपके अमरीकी बनना चाहने से क्या होता है ? असल बात तो तब होती है, जब ये लोग आपको अमरीकी मानें। ये लोग आपके रंग और शक्लोसूरत को देखकर पूछेगें ही कि आप किस देश से है। उनके लिए यह प्रश्न बड़ा सहज है, लेकिन सवाल उठते ही आप दूसरे की कैटेगरी में आ जाते हैं।''(15) अनीषा भी महसूस करती है कि तेरह वर्ष विदेश में रहकर भी वी इस देश का हिस्सा नहीं बन पाई। उसे लगता है कि वे अपने को 'सुपीरियर समझते हैं, लेकिन क्यों समझते है, पता नहीं। 'विभक्त' कहानी की अनन्या अपने अस्तित्व की तलाश में भारत तक पहुँचती है। दो संस्कृतियों में विभक्त अनन्या को भारत आना और रहना इसलिए पंसद है ''कि वहाँ आकर वह वहीं की हो जाती है। कोई यह नहीं पूछता कि मैं कहाँ की हूँ। मैं किसी को विदेशी नही लगती और जहाँ मैं पैदा हुई हूँ, जहाँ मेरा घर है, हमेशा से रहती आ रही हूँ? यहाँ हर नया मिलनं वाला यह पूछता है कि मैं किस देश की हूँ।''(16) जैसे अनन्या अमरीकी नहीं हो सकती। जबकि वह उन्हीं की तरह वहाँ की नागरिक है। ऐसा लगता है कि वह देश केवल गोरों का है। वास्तविकता यही है कि प्रवासी अब भी अपने अस्तित्व के लिए लड़ रहे हैं। आज तो स्थिति और भी बिगड़ चुकी है। अमेरिकी लोग सरेआम भारतीयों पर हमला कर उन्हें नीचा दिखा रहे हैं।

अमेरिका में बढ़ते नस्ली हमले यह स्पष्ट करते हैं कि उनकी नज़रों में भारतीय लोगों की क्या जगह है। वर्षों से विदेश में बस रहे भारतीय अपनी जान, अपने अस्तित्व को लेकर चिंतित हैं। वे विरोध करने की मुद्रा में नहीं हैं, क्योंकि वह देश अपना नहीं है। 'पार्क में' कहानी का मनु इस हक़ीकत को बयान करता है। ''विरोध वह नहीं करता। यहाँ आकर, यहाँ के माहौल में इतना अपनापन हुआ ही नहीं कि उसके खिलाफ कुछ बोल सके।''(17) जब हक़ ही नहीं है, तो किस बूते पर विरोध करेगा। यही सच है प्रवासी भारतीयों का। वहाँ उन्हें हर सुख–सुविधाएँ प्राप्त है, लेकिन विरोध करने का और देश को अपना कहने का हक़ नहीं है। जब कोई ऐसा करता है, तो उसे हिंसा का शिकार होना पड़ता है। मनु जब अमेरिकी युद्ध नीति को गलत ठहराते हुए उसका विरोध करता है, तो उसे भी इसकी सज़ा भुगतनी पड़ती है। बिल उसे मारते हुए कहता है कि तुम गद्दार को। तुम ने इस देश के लिए क्या किया है ? चले जाओ यहाँ से। प्रवासी भारतीयों की स्थिति त्रिशंकु की तरह हो गई है। इस कहानी संग्रह की प्रत्येक कहानी एक सच को बयान करती है चूंकि सुषम बेदी ने भारतीय और विदेशी समाज को करीब से देखा है, इसलिए वे इन दोनों की समस्याओं, उसके प्रभाव को गहराई से व्यक्त कर सकी है।

संदर्भ :

(1) वर्मा, रामचन्द्र : हिन्दी शब्दकोश।
(2) *इनसाइकलोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका, भाग 4, पृ. 68.*
(3) *प्रवासी साहित्य, गंगनाचल पत्रिका, पृ. 5.*
(4) *वही, पृ. 6.*
(5) *वही, पृ. 7.*
(6) *वही, पृ. 11.*
(7) *बेदी, सुषम : चिड़िया और चील, पराग प्रकाशन, पृ. आप से।*
(8) *वही, पृ. 19.*
(9) *वही, पृ. 161.*
(10) *वही, पृ. 23.*
(11) *वही, पृ. 63.*
(12) *वही, पृ. 132.*
(13) *वही, पृ. 132.*
(14) *नागार्जुन की प्रतिनिधि कविताएँ, पृ. 29.*
(15) *बेदी, सुषम : चिड़िया और चील, पृ. 150.*
(16) *वही, पृ.116.*
(17) *वही, पृ. 95.*

❁❁

UGC Approved Journal
Research Link
Since March 2002
An International, Registered & Referred Monthly Journal : Hindi Literature
Research Link - 166, Vol - XVI (11), January - 2018, Page No. 109-110
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

भारतीय संस्कृति, अनेकता में एकता : एक अध्ययन

प्रस्तुत शोधपत्र भारतीय संस्कृति को केन्द्र में रखकर लिखा गया है। सच तो यह है कि हमारी संस्कृति का मूल अंग और आत्मा 'धर्म' है। एक धर्म में सभी धर्मों व सम्प्रदायों की शिक्षा को यदि कहीं किसी संस्कृति में देखना हो तो उसे भारतीय संस्कृति में देखा जा सकता है। वेद, उपनिषद, पुराण, रामायण, महाभारत आदि सारे ग्रंथों के सार से हमारी संस्कृति बनी है और यही इसकी विशेषता है। हमारी संस्कृति उदार और गौरवशाली है, जो सबको साथ लेकर चलती है। भारतीय संस्कृति प्राचीनतम संस्कृति होने के कारण आज भी इसकी जड़ें गहरी हैं। यह संस्कृति अपने ठोस धरातल पर विकसित हुई है। 21वीं सदी के इस दौर में भी इसकी अपनी प्रासंगिकता है।

डॉ.बेबी सुमंगला पी.वी.

विश्व की प्राचीनतम संस्कृति है, भारतीय संस्कृति। संस्कृति शब्द संस्कृत की 'कृ' धातु के साथ 'सम्' उपसर्ग तथा 'क्तिन' प्रत्यय के लगाने से बना है। इसका व्युत्पत्तिमूलक अर्थ 'भूषणभूत सम्यक् कृति' या सुधरी हुई स्थिति है। सर्वप्रथम 'संस्कृति' शब्द का प्रयोग 'ऐतरेय ब्राह्मण' में मिलता है, जो आत्म संस्कार का अन्यतम उपाय है। संस्कृति किसी समाज में गहराई तक व्याप्त गुणों के समग्र रूप का नाम है, जो उस समाज के सोचने, विचारने, कार्य करने, खाने–पीने, बोलने, नृत्य, गायन, साहित्य आदि में परिलक्षित होती है।

विद्वानों ने संस्कृति को अखण्ड मानते हुए कहा है कि संसार में सर्वोच्च जो खोजा पहचाना गया है, उससे अपने को परिचित करना ही संस्कृति है। अर्थात् अपने को पूर्णता की ओर ले जाना ही संस्कृति है।

भारतीय संस्कृति भारत का प्राण है, वह अध्यात्मिकता और नैतिक मूल्यों पर आधारित है। इसकी मान्यताएँ एवं परंपराएँ हमारी मूल्य एवं बहुमूल्य धरोहर होने के कारण राष्ट्र की आत्मा है।

हमारी संस्कृति अध्यात्म पर आधारित है। अध्यात्म का अर्थ है 'आत्मनः सम्बद्धम' अर्थात् आत्मा का व्यक्ति से संबंध रखनेवाला। अध्यात्म परमात्मा संबंधी ज्ञान है। आत्मा–परमात्मा संबंधी चिन्तन–मनन अध्यात्मवाद का विषय है। यह दर्शनशास्त्र से सम्बंधित है। अध्यात्मवाद का पूर्ण विकसित रूप हमें उपनिषदों में देखने को मिलता है। उपनिषद् का संदेश है कि हमें विश्वात्मा बनना है। हमें अपनी आत्मा को विश्व में और विश्व को अपनी आत्मा में देखना चाहिए। अयमात्म ब्राह्मं तथा सर्वखल्विदम ब्राह्म के औपनिषद संदेश ही हमारी विश्व मानवतावादी दृष्टि की उत्सभूमि है।

संस्कृति का संबंध मानवों की आत्मा और मन से होता है। भारतीय संस्कृति का मूल आदर्श आत्मा का ज्ञान है। इसमें संसार के भौतिक तत्वों के प्रति मोह नहीं है। भारतीय संस्कृति में पुण्य को प्रधानता दी गयी है। व्यास महर्षि के बारे में ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने अठारह पुराणों में ये दो बात ही कही है, कि 'परोपकार ही पुण्य है और दूसरों को पीड़ा देना ही पाप है।'

भारतीय संस्कृति में प्रेय और श्रेय के दो रूप स्वीकृत हैं। प्रेय कहते हैं, लोक में कर्म करते हुए अभ्युदय प्राप्त करना। इसका अर्थ यह है कि धर्मपूर्वक अच्छे कर्म करते जाना, लोक में निरंतर मानसिक शान्ति प्राप्त करना। श्रेय कहते हैं, आत्मिक उन्नति प्राप्त करना। श्रेय का अर्थ है, पारलौकिक परमानंद। 'मोक्ष' उसका और एक अर्थ है। आत्मा के ज्ञान से अपने आप को प्रकाशित रखना, परलोक में मुक्ति पाने के लिए विश्वास रखना और अत्मिक ज्ञान से ही मुक्ति पाना श्रेय है। हमारी संस्कृति का मूलाधार यह विश्वास है।

चरित्र, विज्ञान, साहित्य, धर्म आदि चार तत्व संस्कृति में विद्यमान रहते हैं। चरित्र का अर्थ है, व्यापारिक, नैतिक और पारिवारिक चरित्र। व्यापार में ईमानदारी होनी चाहिए। शरीर और परिवार में चरित्र की पवित्रता नैतिकता पर निर्भर करती है। विज्ञान का अर्थ आत्मा का विशेषज्ञान भी माना जाता है। आज विज्ञान में भौतिक पदार्थों के उपयोग का ज्ञान ही प्रधान माना जाता है। इसी तरह साहित्य में देशभर में रचा जानेवाला सभी विषयों का ग्रन्थ समूह आ जाता है।

धर्म, संस्कृति का मूल अंग है। भारतीय संस्कृति में धर्म लौकिक अभ्युदय और मोक्ष देने वाला कहा गया है। सभी धर्मों एवं संप्रदायों की शिक्षा का एकसाथ लेकर चलना और सामूहिक रूप से देश को एक मानना भारतीय संस्कृति की विशेषता है। वेद, उपनिषद, पुराण, रामायण, महाभारत आदि सारे ग्रन्थों को सारे देश में समान महत्व मिलता है। हमारी संस्कृति उदार और गौरवशालिनी

सहायक प्राध्यापक (हिन्दी विभाग), महात्मा गाँधी गवर्नमेंट आर्ट्स कॉलेज, माहि (केरल)

है। देश में धार्मिक आन्दोलनों ने इस संस्कृति को और उदार बनाया है।

बौद्ध, जैन, शैव, शाक्त तथा वैष्णव धर्म प्रचारकों ने भारतीय संस्कृति में अनेक तत्व जोड़े हैं। उनमें उल्लेखनीय हैं, सहनशीलता, अहिंसा, परोपकार आदि गुणों का नाम। भारत में प्राचीनकाल में प्रातिक साधनों की कमी नहीं थी। फिर भी धार्मिक प्रवृत्ति का उदय यहाँ हुआ। भारत में मुसलमान शासन काल में इस्लामी संस्कृति का प्रचार हुआ। सूफी एवं अन्य धार्मिक संत तथा साधकों ने भारतीय धर्म साधन पर प्रभाव डाला है।

धार्मिक क्षेत्र में 19वीं 20वीं सदी में भारतीय संस्कृति ने ही पश्चिमी देशों को अधिक प्रभावित किया है। भारतीय संस्कृति के दार्शनिक क्षेत्र ने इस्लामी संस्कृति के ईश्वर लोक, जीव, भोग एवं मोक्ष संबधी विचारों को अपने पूर्ववर्ती गुणों में समाहित कर लिया। इससे भारतीय संस्कृति का रूप सभी भारतीयों के लिए ग्राह्व बन गया। इस संस्कृति का धार्मिक एवं दार्शनिक स्वरूप विदेशों को अत्यधिक प्रभावित कर रहा है। अंग्रेजी प्रशासनकाल में भारतीय संस्कृति के वैज्ञानिक और साहित्यिक क्षेत्र बहुत प्रभावित हुए हैं। विश्व के सभी पश्चिमी और पूर्वी देशों ने भारतीय संस्कृति की महत्ता को स्वीकृत किया है। साहित्य के साथ ही भारतीय संस्कृति का प्रचार विदेशों में होता गया है। आठवीं शताब्धी से जावा, सुमात्रा आदि द्वीपों में भारतीयों ने इस संस्कृति का प्रचार किया। नेपाल भारत के साथ एक अच्छा सांस्कृतिक सम्बंध युगों से स्थापित किये हुए हैं। संसार के सभी देशों के दार्शनिक भारतीय संस्कृति के दार्शनिक पक्ष की अलौकिकता को आदरपूर्वक स्वीकार करते हैं। इसलिए भारतीय दर्शन का पठन–पाठन प्रायः विदेशी विद्यालयों में हो रहा है। बर्मा, तिब्बत और चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ, जो कि भारतीय संस्कृति का एक सुदृढ़ अंग है।

भारतीय संस्कृति में संकीर्णता नहीं है। सांप्रदायिक मतभेद भी नहीं है, मानवों का बीच भेद–भाव की खाई भी नहीं है। आत्मीय शान्ति की खोज में अनेक विदेशी लोग यहाँ आते रहते हैं।

समानभाव से आचरण करना इस संस्कृति की एक विशेषता है। सब के प्रति खुले रूप से व्यवहार करना यहाँ के जन–जीवन का और एक गुण है। भारतीय संस्कृति में धर्म और दर्शन का अद्भुत समन्वय हुआ है। यह संस्कृति समन्वयवाद एवं सहिष्णुता केलिए प्रसिद्ध है। आध्यात्मवाद ने हमें समन्वयवादी बनाया है। अनेकता में एकता का दर्शन हमारी संस्कृति का सनातन सिद्धांत है। यह संस्कृति 'अहिंसा परमोधर्म' का आदर्श प्रस्तुत करती है। त्याग, तप एवं अहिंसा हमारी संस्कृति का मूलभूत सिद्धांत है। वैदिक धर्म या वैदिक संस्कृति की उत्तराधिकारी भारतीय संस्कृति है।

राष्ट्रीय भावना हमारी राष्ट्रीय संस्कृति एवं सभ्यता का प्राण है। यह भारतीय संस्कृति का एक मूलभूत तत्व है। इस संस्कृति का एक मुख्य तत्व निष्काम भाव शुभ कर्म करना है।

आजकल हर एक देश दूसरे देशों में सांसतिक संगठनों की स्थापना करते हैं। भारत सरकार ने विदेशों में अपने सांस्कृतिक प्रतिनिधि नियुक्त किए हैं, जो विदेशों में भारतीय संस्कृति की व्याख्या करते हैं। इससे अन्य देशों के साथ हमारे सांस्कृतिक सम्बंध दृढ़ होते जा रहे हैं।

भारत की प्राचीनतम संस्कृति, भारतीय संस्कृति की मुख्य विशेषता उसका स्थायित्व है। यह संस्कृति ठोस धरातल पर स्थित है। यह एक विराट संस्कृति है। यह समन्वयमूलक है। यह संस्कृति अतिप्राचीनकाल से गतिशील रही। उसका पहले जो महत्व था, वह अब भी है। यह संस्कृति मानव मूल्य को महत्व देती है। उसके अनुसार इस संसार के केन्द्र मानव सबसे श्रेष्ठ वस्तु है। संसार की अन्य संस्कृतियाँ उत्पन्न होकर नष्ट हो गई है, लेकिन भारतीय संस्कृति को ऐसी शक्ति रही कि कोई शक्ति उसे नष्ट नहीं कर सकी।

भारत अपनी संस्कृति और सांसतिक एकता के बल पर ही जीवित रहेगा, क्योंकि उसकी आत्मा अजर–अमर है। उसे कोई मिटा नहीं सकता। भारत की अखण्डता के लिए हमारी संस्कृति की रक्षा तथा उसके वास्तविक रूप के प्रचार और प्रसार की आज परम आवश्यकता है।

संदर्भ :

(1) सोती, वीरेन्द्र चन्द्र : भारतीय संस्कृति की सुगंध।

(2) *पिल्लै, एन.पी. कुट्टन : भारतीय संस्कृति और आध्यात्म।*

❁ ❁

UGC -

APPROVED - JOURNAL

UGC Journal Details

Name of the Journal :	Research Link
ISSN Number :	09731628
e-ISSN Number :	
Source:	UNIV
Subject:	Accounting;Anthropology;Business and International Management;Economics, Econometrics and Finance(all);Education;Environmental Science(all);Finance;Geography, Planning and Development;Law;Political Science a;Social Sciences(all)
Publisher:	Research Link
Country of Publication:	India
Broad Subject Category:	Arts & Humanities;Multidisciplinary;Social Science

Print

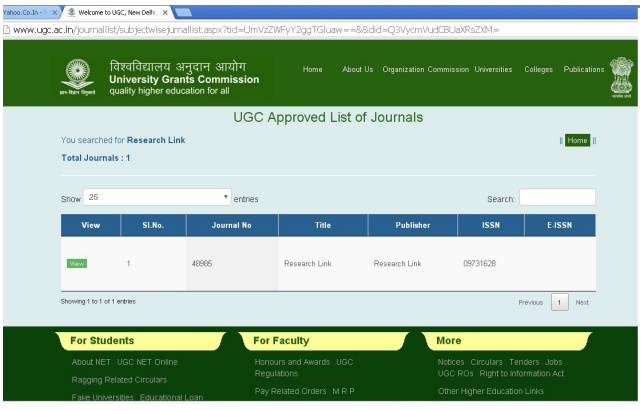

UGC Approved Journal
Research Link
Since March 2002
An International, Registered & Referred Monthly Journal : Hindi Literature
Research Link - 166, Vol - XVI (11), January - 2018, Page No. 111-113
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में हिन्दी की स्थिति

प्रस्तुत शोधपत्र, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में हिन्दी की वर्तमान स्थिति को केन्द्र में रखकर लिखा गया है। यूं तो राष्ट्रीय संदर्भ में देखें, तो हिन्दी की स्थिति जिस स्तर और स्थिति पर आंकड़ों के आधार पर बताई जाती है, वास्तविक स्थिति उससे भिन्न है। हमारे यहाँ ही हिन्दी को लेकर सर्वाधिक संघर्ष हुए हैं। इसके बाद भी ढाक के तीन पात दिखाई देते हैं। राष्ट्रीय स्तर पर केवल सरकारें प्रयास या संस्थानों या अनुदानों के आधार पर हिन्दी का विकास नहीं हो सकता है। कबीर ने भाषा को बहता नीर बताया है। इसका स्पष्ट तात्पर्य है कि जितनी गति और प्रवाह व्यक्तिगत प्रयोग के धरातल पर किया जाएगा, निश्चय ही स्थिति में परिवर्तन आ सकता है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी यही स्थिति है। केवल सैद्धांतिक प्रयास काफी नहीं है, वहाँ भी व्यावहारिक स्तर पर बहुत कुछ करने की आवश्यकता है, तभी हिन्दी के दिन फिरेंगे।

डॉ.सुभाष सैनी

किसी भी परिस्थिति में अपनी बात की अभिव्यक्ति के लिए एक भाषा की आवश्यकता होती है तथा भाषा में ही वह ताकत होती है, जो जनमत तैयार करके राष्ट्र की कायापलट कर सकती है। जहाँ तक राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रश्न है, तो यह बात निर्विरोध और निर्विवाद सत्य है कि भारत की आज़ादी में हिन्दी भाषा का महत्वपूर्ण योगदान रहा है तथा इस बात का इससे अच्छा उदाहरण और क्या हो सकता है कि बंगला भाषा के अमर कथाकार श्री बंकिम चन्द्र चटर्जी ने राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत जिस 'आनन्दमठ' की बंगला भाषा में रचना की थी, उसे हिन्दी भाषा में अनुदित होकर क्रांतिकारियों की रक्त शिराओं में आज़ादी प्राप्त करने का और अधिक जोश भर दिया था तथा 'आनन्दमठ' में संकलित 'वंदे मातरम' गीत आज़ादी के सम्बल के रूप में न केवल क्रांतिकारियों में बल्कि जन–जन में प्रिय हो गया था। राष्ट्रभाषा हिन्दी की इस ताकत का परिणाम यह हुआ कि जन–जन में आज़ादी के प्रति एक ललक पैदा हो गई थी।

हिन्दी पद्य साहित्य में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, रामधारी सिंह 'दिनकर', माखन लाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', गोपाल सिंह 'नेपाली', सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' तथा सुभद्रा कुमारी चौहान इत्यादि के नाम लिए जा सकते हैं, जिन्होंने अपनी कविताओं व गीतों के माध्यम से भारत की आज़ादी में योगदान दिया है।

हिन्दी भाषा के प्रसिद्ध कवि श्री माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा रचित यह पंक्तियाँ आज भी उतनी ही सटीक एवं प्रेरणादायी प्रतीत होती हैं :

मुझे तोड़ लेना वनमाली,
उस पथ पर देना तुम फेंक।।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने,
जिस पथ जायें वीर अनेक।।

राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम से कवि बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' जन–जन में क्रांति की हिलोर भर देना चाहते हैं :

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ,
जिससे उथल–पुथल मच जाए।
एक हिलोर इधर से आए,
एक हिलोर उधर से आए।।

इसी प्रकार गद्य साहित्य में मुंशी प्रेमचन्द के 'रंगभूमि' व 'कर्मभूमि' उपन्यास में स्वदेशी आन्दोलन, गाँधीवाद एवं राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की चेतना से ओतप्रोत भावनाओं के दर्शन होते हैं। भारत की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महिमा का गुणगान करते हुए जयशंकर प्रसाद अपने नाटक 'चन्द्रगुप्त' में लिखते हैं :

अरूण यह मधुमय देश हमारा
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को
मिलता एक सहारा।

श्री बालगंगाधर तिलक जी ने अपने समाचार–पत्रों 'केसरी' तथा 'मराठा' में स्वदेशी प्रचार पर बहुत बल दिया तथा अंग्रेजों की नीतियों का खंडन किया।

वर्तमान समय में हिन्दी की स्थिति दिन–प्रतिदिन और अधिक सुखद होती जा रही है। आज हिन्दी का प्रचार–प्रसार और पठन–पाठन निरन्तर बढ़ रहा है। तकनीकि, चिकित्सा तथा विज्ञान आदि क्षेत्रों में भी आज हिन्दी अपनी जड़ें मजबूत कर चुकी है। इस दिशा में पारिभाषिक शब्दावली का भी विशेष योगदान रहा है। राष्ट्रभाषा हिन्दी के बढ़ते महत्व को इस बात से भी परखा जा सकता है कि आज उच्च स्तर की लगभग सभी प्रतियोगी परीक्षाओं में हिन्दी भाषा में प्रस्तुति की छूट दी जाती है, जिसका सुखद परिणाम यह हो रहा है कि अंग्रेजी में अपनी अभिव्यक्ति न कर पाने वाले प्रतिभागियों को भी आगे बढ़ने का अवसर प्राप्त हो रहा है।

हिन्दी विभाग, दयाल सिंह कॉलेज, करनाल (हरियाणा)

विश्व हिन्दी सम्मेलन के द्वारा भी हिन्दी के प्रचार–प्रसार में बढ़ोतरी हो रही है। विगत कुछ वर्षों में, इस दिशा में मीडिया जगत ने सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। दूरदर्शन के सरकारी एवं गैर–सरकारी विभिन्न हिन्दी चैनलों द्वारा असंख्य धारावाहिकों की प्रस्तुति इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कड़ी है। विभिन्न हिन्दी चैनलों द्वारा 24 घन्टे हिन्दी में समाचार प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343(1) में यह बात स्पष्ट रूप से कही गई है कि हिन्दी भारत की राजभाषा है। 26 जनवरी, 1950 को हिन्दी को भारत संघ की राजभाषा घोषित किया गया। इसके साथ अंग्रेजी को भारत की सहभाषा भी घोषित किया गया। इसके अतिरिक्त संविधान की आठवीं सूची में 15 राजभाषाओं का भी उल्लेख किया गया। संस्कृत, उर्दू और सिंधी किसी एक विशेष प्रदेश की भाषाएँ नहीं हैं। संविधान ने हिन्दी को भारत की राजभाषा घोषित किया है, राष्ट्रभाषा नहीं। भारतीय संविधान और राजभाषा अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार हिन्दी के प्रयोग के प्रमुख क्षेत्र हैं, शासन व्यवस्था, विधानपालिका, न्यायपालिका और कार्यपालिका। हमारे देश में समय–समय पर अलग–अलग भाषाएँ राजभाषा के रूप में काम करती रही हैं। उदाहरण के रूप में सम्राट अशोक से पहले संस्कृत भाषा में राजकाज चलता था। महाराज अशोक ने 'पालि' को राजभाषा का दर्जा दिया। मुगलकाल में फारसी राजभाषा थी। सच तो यह है कि जब से प्रशासन की परम्परा चली, तब से राजभाषा का प्रयोग किया जाने लगा।

राजभाषा शासन काल में तत्कालीन हिन्दी भाषा राजभाषा के रूप में प्रयुक्त होती थी। इसके बाद भारत में विदेशी शासकों का आक्रमण हुआ और मुगल शासकों ने अपनी सत्ता स्थापित की। फलस्वरूप हिन्दी के स्थान पर फारसी और अरबी भाषाओं को अपनाया गया। लेकिन राजपूत शासकों के राज्य में हिन्दी ही राजभाषा के रूप में प्रयुक्त होती रही। विशेषकर मराठों ने हिन्दी को ही राजभाषा का दर्जा देकर सम्मानित किया। यहाँ तक कि अकबर के शासन काल में भी फारसी के साथ–साथ हिन्दी को भी आश्रय मिलता रहा। आगे चलकर ब्रिटिश शासन काल में अंग्रेजों ने भी फारसी को ही राजभाषा के रूप में अपनाया, लेकिन सन् 1855 में लॉर्ड मैकाले ने अंग्रेजी को ही भारत की शिक्षा तथा प्रशासन की भाषा बना दिया।

अन्ततः आज़ादी के उपरान्त संविधानिक रूप से हिन्दी को भारत संघ की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया, जिसकी लिपि देवनागरी होगी। संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अन्तर्राष्ट्रीय रूप होगा। लेकिन इसी के साथ–साथ यह प्रावधान भी किया गया कि आगामी 15 वर्षों अर्थात सन् 1965 तक प्रशासन सम्बन्धी कार्य अंग्रेजी में करने की छूट होगी। तब से लेकर आज तक व्यावहारिक रूप से अंग्रेजी ही राजभाषा के सिंहासन पर विराजमान है और हिन्दी एक दुर्बल उत्तराधिकारी की भांति इस सिंहासन के खाली होने की प्रतीक्षा में वर्षों से खड़ी है।

सच तो यह है कि भारत में हिन्दी ही राष्ट्रभाषा के पद को गौरवान्वित करने की क्षमता से युक्त है। हिन्दी ही एक ऐसी देशव्यापी भाषा है, जिसने राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय सारे देशवासियों को भावात्मक एकता के सुदृढ़ सूत्र में बांधे रखा तथा जिसने सांस्कृतिक और राष्ट्रीय जागरण का शंख–नाद किया। पूरे स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय हिन्दी को राष्ट्रभाषा का गौरव प्रदान किया गया। स्वयं गाँधी जी ने – राष्ट्रभाषा प्रचार समिति तथा वर्धा जैसी संस्था की स्थापना करके हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित कराने का प्रयास किया।

किन्तु कालान्तर में कुछ राजनीतिक कारणों से 'राष्ट्रभाषा' के पर्यायवाची के रूप में 'राजभाषा' शब्द प्रचलित करना पड़ा। स्वयं गाँधी जी ने कहा – ''हमारे देश में हिन्दी ही एक मात्र राजभाषा है।'' किन्तु आज गाँधी जी का स्वदेशी व स्वभाषा का सपना चूर–चूर हो रहा है। संसद से लेकर सड़क तक सर्वत्र अंग्रेजी का ही अखंड साम्राज्य है। हिन्दी न राष्ट्रभाषा बन सकी और न ही व्यवस्थित रूप में राजभाषा ही। किन्तु हिन्दी की आन्तरिक शक्ति व इसके महत्व को स्वीकारते हुए प्रसिद्ध कवि श्री उदय भानू 'हंस' जी ने ठीक ही कहा है कि –

फल–फूल नहीं जिसमें, वह उद्यान नहीं,
तन व्यर्थ है वह, जिसमें रहें प्राण नही।
कितना भी कोई, तर्क या वितर्क करे,
हिन्दी के बिना, हिन्द की पहचान नहीं।।

भारत में हिन्दी ही राष्ट्रभाषा के पद को गौरवान्वित करने की क्षमता से युक्त है। हिन्दी ही एक ऐसी देशव्यापी भाषा है, जिसने राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय सारे देशवासियों को भावात्मक एकता के सुदृढ़ सूत्र में बांधे रखा तथा जिसने सांस्कृतिक और राष्ट्रीय जागरण का शंख–नाद किया।

यहाँ तक कि पूरे स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय हिन्दी को राष्ट्रभाषा का गौरव प्रदान किया गया। स्वयं गाँधीजी ने – राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा जैसी संस्था की स्थापना करके हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित कराने का प्रयास किया।

जहाँ तक विश्व बाज़ारीकरण के इस युग में हिन्दी के महत्व का प्रश्न है, तो यह कहना असंगत नहीं होगा कि जिस तीव्र गति से इसका प्रचार–प्रसार हो रहा है। उस दृष्टि से आने वाला कल हिन्दी का ही है। अंग्रेजी के दौर में हिन्दी ने ख़ुद के प्रयासों से ही भारत में वो शौहरत हासिल कर ली है, जिसकी परिकल्पना शायद ही कभी की गई हो। हालांकि आज़ादी से पहले कई अहिन्दीभाषी नेताओं ने हिन्दी को देश की प्रमुख संपर्क भाषा के रूप में स्वीकार करने का आह्वान किया था, किन्तु सियासी दावपेचों के चलते तथा अलग–अलग राज्यों की अलग–अलग क्षेत्रीय भाषाएँ होने के कारण हिन्दी के प्रति केवल विरोध के लिए विरोध किया जाता रहा। इस खालीपन का फायदा बेशक अंग्रेजी ने उठाया हो, किन्तु हिन्दी के बढ़ते प्रचार–प्रसार ने इसके लिए प्रसिद्धि के अनेक द्वार खोल दिए। यही कारण था कि देश की आर्थिक राजधानी मुंबई सहित बंगलूर और चेन्नई में भी विगत 10–12 वर्षों में हिन्दी ने बोलचाल की भाषा के रूप में चमत्कारिक प्रगति की है। जबकि दूसरी ओर एक समय वह भी था कि जब विशेषकर मुंबई और चेन्नई में तो हिन्दी का विरोध एक राजनीतिक फैशन माना जाता था।

ऐसे षड्यन्त्रों की विकृत मानसिकता का विरोध करते हुए टंडन जी ने लिखा था कि, ''यह क्या पाखण्ड चन्द लोगों न चलाया

है कि युक्त प्रान्त की प्रान्तीय हिन्दी अलग और सारे राष्ट्र की हिन्दी अलग ? राष्ट्रीय विधान के शब्द लेकर बाल की खाल निकालना और कहना कि हिन्दी एक नहीं, दो भाषाएँ हैं। कहाँ तक मुनासिब है ?''

सच तो यह है कि विश्व बाज़ारीकरण की दृष्टि से आज हिन्दी एक सुखद मोड़ पर खड़ी है। देश छोड़कर गए लोगों को भारतीय संस्कृति से जोड़ने में हिन्दी साहित्य और सिनेमा किस तरह महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं यह किसी से छिपा नहीं है। यह विश्व बाज़ारीकरण का ही परिणाम है कि आज विश्व के अनेक देशों में हिन्दी का पठन–पाठन हो रहा है। इसके साथ–साथ विज्ञान, टेक्नोलॉजी, आर्थिक विकास तथा जनसंचार को मजबूत बनाने में हिन्दी की भूमिका निकट भविष्य में और अधिक बढ़ेगी। राजकपूर की फिल्म 'श्री 420' के गीत 'मेरा जूता है जापानी' की लोकप्रियता रूस और चीन में जिस भारतीय संस्कृति के नमूने के रूप में बनी, उसे अनदेखा नहीं किया जा सकता। इसी दिशा में विशेषकर फिल्मी पत्रकारिता का योगदान भी कम नहीं आंका जा सकता। विज्ञापन की दुनिया में बाज़ारवाद और बाज़ारीकरण दोनों को ही प्रभावित करने की क्षमता है। आज हिन्दी में अनेक विदेशी कम्पनियों के विज्ञापन प्रचारित व प्रसारित किए जा रहे हैं। 'ठंडा मतलब कोका कोला', इसका एक सशक्त उदाहरण है, जिसके प्रचार प्रसार से कम्पनी को करोड़ों, अरबों का मुनाफा हुआ है। विश्व बाजारीकरण के कारण आज हिन्दी ने कुछ ऐसे प्रत्यय भी अपनाए हैं, जो कि विदेशी भाषाओं से लिए गए हैं। इनमें से अरबी, फारसी तथा अंग्रेजी के कुछ उल्लेखनीय प्रत्यय हैं :

प्रत्यय	–	**उदाहरण**
अन्दाज़	–	तीरन्दाज
आना	–	सालाना, जुर्माना, मेहनताना
कार	–	दस्तकार, शिल्पकार, काश्तकार
खोर	–	रिश्वतखोर, नशाखोर

तुर्की के प्रत्यय

प्रत्यय	–	**उदाहरण**
दार	–	नम्बरदार, थानेदार, खबरदार
बान	–	दरबान, साहेबान, बागबान
बाज़	–	धोखेबाज़, पतंगबाज़, कबूतरबाज़
दान	–	कमलदान, इत्रदान

अंग्रेजी के प्रत्यय

प्रत्यय	–	**उदाहरण**
इज़्म	–	कम्यूनिज्म, सोशलिज्म
इस्ट	–	कम्यूनिष्ट, सोशलिस्ट

किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आज हिन्दी अपनी समृद्धता के कारण 'मासेस–लैंग्वेज' अर्थात जन–जन की भाषा कही जाने लगी है। इसी प्रकार आज फंक्शनल हिन्दी भी फ्रेंच, जर्मन, जैपनीज भाषा की तरह ही फॉरेन लैंग्वेज के रूप में धीरे–धीरे न केवल देश में, बल्कि विदेशों में भी लोकप्रिय हो रही है। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि हिन्दी अपने रास्ते खुद–ब–खुद प्रशस्त कर रही है। आज उसे किसी की सहानुभूति की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह विश्व की श्रेष्ठतम भाषा है। दुनिया की कोई भाषा उसका मुकाबला आसानी से नहीं कर सकती। भारत से बाहर फिजी, मॉरिशस, सूरीनाम, त्रिनिदाद, कनाडा और दक्षिण अफ्रीका में बसे लाखों लोगों के बीच आज हिन्दी सम्पर्क भाषा के तौर पर विकसित हुई है। यहाँ के लोग मातृभाषा के रूप में हिन्दी का प्रयोग करते हैं। ये बात अलग है कि दुनिया के कुछ ताकतवर लोगों ने अपनी प्रचार व दुष्प्रचार की तोपें केवल और केवल यह सिद्ध करने के लिए भिड़ा रखी है कि अंग्रेजी विश्व की श्रेष्ठतम भाषा के साथ–साथ सबसे बड़ी भाषा भी है, किन्तु यह अपने आप में एक प्रश्न है कि वह सबसे बड़ी कैसे है ? क्योंकि जो भाषा सिर्फ अमेरिका, ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और आधे कनाड़ा में बोली जाए उसे दुनिया की सबसे बड़ी भाषा कैसे माना जा सकता है .... ?

संदर्भ :

(1) खण्डेलवाल, डॉ0 जयकिशन (संपादक) : हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ।

(2) *सिंह, ओमप्रकाश (संपादक) : संचार माध्यमों का प्रभाव।*

(3) *चतुर्वेदी, जगदीश्वर एवं सिंह, सुधा (संपादक) : भूमण्डलीकरण और ग्लोबल मीडिया।*

(4) *कालेलकर, काका साहेब (संपादक) : राष्ट्रभारती हिन्दी का मिशन।*

(5) *डॉ0 सत्यव्रत (संपादक) : भारतीय राष्ट्रभाषा सीमाएँ तथा समस्याएँ।*

(6) *दुबे, डॉ0 उदय नारायण (संपादक) : राजभाषा के संदर्भ में हिन्दी आंदोलन का इतिहास।*

(7) *शर्मा, डॉ0 रत्न चन्द्र (संपादक) : भाषा विज्ञान और मानक हिन्दी।*

❁ ❁

UGC - APPROVED - JOURNAL

UGC Journal Details

Name of the Journal :	Research Link
ISSN Number :	09731628
e-ISSN Number :	
Source:	UNIV
Subject:	Accounting;Anthropology;Business and International Management;Economics, Econometrics and Finance(all);Education;Environmental Science(all);Finance;Geography, Planning and Development;Law;Political Science a;Social Sciences(all)
Publisher:	Research Link
Country of Publication:	India
Broad Subject Category:	Arts & Humanities;Multidisciplinary;Social Science

UGC Approved Journal
Research Link
Since March 2002
An International, Registered & Referred Monthly Journal : Hindi Literature
Research Link - 166, Vol - XVI (11), January - 2018, Page No. 114-115
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

चित्रा मुद्गल के कथा-साहित्य में नारी विमर्श (कामकाजी नारी के विशेष संदर्भ में)

प्रस्तुत शोधपत्र, चित्रा मुद्गल के कथा-साहित्य में नारी विमर्श, विशेषकर कामकाजी नारी के विशेष संदर्भ पर आधारित है। एक नारी होने के नाते नारी की समस्याओं को बहुत ही ईमानदारी एवं सूक्ष्मता के साथ अभिव्यक्त करने में लेखिका ने पूर्णतः कामयाबी हासिल की है। नारी समाज में कई प्रकार से प्रताड़ित होती रही है। परिवार में, समाज में तथा उसके जीवन में समस्त कर्मक्षेत्रों में किसी-न-किसी प्रकार से उसका शोषण होता रहता है। चित्राजी ने अपनी कहानियों में नारी जीवन के विभिन्न पहलुओं पर नारी की कमजोरियों एवं उनकी खूबियों सहित उसके जीवन संघर्ष का यथार्थ चित्रण किया है।

मधुबाला

चित्राजी ने कामकाजी नारी के जीवन की दफ्तर व घर से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं का चित्रण किया है तथा कामकाजी नारी इन सभी समस्याओं का सामना कैसे करती है, इसका बहुत संजीदगी से यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है।

'ट्रेन छूटने तक' कहानी में संघर्षशील नारी जीवन का एक सुन्दर पहलू दृष्टव्य है। इसमें एक ओर दफ्तरी वातावरण में स्त्री के प्रति पुरूषों की मानसिकता अभिव्यक्त हुई है, तो दूसरी ओर उसी स्त्री का शोषण उसकी अपनी माँ द्वारा ही किया जा रहा है। कहानी की नायिका शोभा एक दफ्तर में टाइपिस्ट के पद पर कार्यरत है। उसके घर में माँ और उसक छोटा भाई है। उन दोनों का खर्च भी शोभा की आय से ही निकलता है। इसलिए वह अपनी आमदनी बढ़ाने के लिए अतिरिक्त काम भी करती है। उसके भाई की पढ़ाई में बिल्कुल दिलचस्पी नहीं है, फिर भी उसकी माँ उसे पढ़ाना चाहती है। अंत में उसका भाई एक ऐसी स्त्री से शादी कर लेता है, जिसका एक बेटा भी है। उसकी माँ इस शादी को बिल्कुल पसन्द नहीं करती। फिर भी शोभा की नौकरी से जो मिलता है, उसका आधा भाग माँ भाई को दे देती है। शोभा के मन में शादीशुदा जीवन जीने की तमन्ना है, लेकिन उसकी माँ नहीं चाहती कि वह शादी करे, क्योंकि वह उसे गाय की तरह दुहना चाहती है। यथा – ''नौकरी का जुआ उसके कन्धों पर से शायद कभी नहीं हट पाएगा। शायद माँ नहीं चाहती कि वह अन्य लड़कियों की भाँति अपना घोंसला बनाए। पापा की मृत्यु के बाद घर का खर्च पूरा करने के लिए उसे दवाइयों की फैक्टरी में पैकिंग गर्ल की नौकरी करनी पड़ी।''(1) अतः यहाँ लेखिका ने शोभा के माध्यम से कामकाजी महिलाओं के संघर्ष एवं उसकी मानसिकता का यथार्थ चित्रण किया है।

कामकाजी महिलाओं के जीवन संघर्ष का दृष्टान्त हैं– 'दरमियान' कहानी। कहानी की नायिका आकांक्षा अखबार के दफ्तर में काम करती है। लड़कियों के मामले में उसका कार्यालय कुछ अधिक ही बदनाम हैं। जैसे लड़कियों व संपादकों के बीच क्या चल रहा है, कौन–सा संपादक कैसा है, किसको लिफ्ट देता है, किसको उपेक्षित करता है। इन तमाम बातों का लेखिका ने विस्तार से वर्णन किया है।

कामकाजी आकांक्षा को अपनी डेढ़ साल की बेटी मिनी को शिशु विकास केन्द्र में छोड़कर दफ्तर जाना पड़ता है। शाम को थकी–हारी जब वह अपनी बेटी को लेने जाती है, तो वह सचमुच उसकी प्रतीक्षा कर रही होती है। जैसे ही वह उसे पुकारती है, खिलौनों के ढेर को नकारकर, डगमग करती हुई वह उसकी ओर दौड़ पड़ती है। फिर मिसेज् हबेवाला उसे अपनी गोदी में आने के लिए चाहे लाख फुसलाए, प्रलोभन दे, मगर वह उनकी ओर नहीं पलटती। वह आकांक्षा के गले में बाहें डालकर उससे चिपक जाती है। मानो आशंकित हो कि कहीं मम्मी फिर से न छोड़कर चली जाए। आकांक्षा का पति अपनी बेटी की मनोभावनाओं को समझते हुए उससे कहता है– ''छोड़ो भी यह नौकरी–वौकरी का चक्कर, घर बैठो, जैसे भी चलेगा, चलाएंगे। सच! इस गुड़िया को यूं छोड़कर जाना अखरता है...।''(2) पति की बातें सुनकर आकांक्षा कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करती। क्योंकि वह जानती है कि भावुकता अत्यन्त दयनीय होती है और सच्चाई अत्यन्त तंगदिल होती है।

इसी प्रकार 'सुख' कहानी कामकाजी महिला के संदर्भ में ध्यातव्य है। कहानी की नायिका सुमंगला जादवपुर विश्वविद्यालय में राजनीति विज्ञान की प्रोफेसर हैं। वह अपनी बेटी पंछी के साथ रहती है। पंछी तीसरी कक्षा में पढ़ती है। पति की हृदयघात से असमय हुई मृत्यु के बाद वह अपनी सास से साथ रहने का आग्रह

शोधार्थी, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

करती है, लेकिन वे नहीं आती। इसलिए उसे दिन–रात घर में रहने वाली एक नौकरानी की आवश्यकता रहती है, जो उसके पीछे पंछी का ख्याल रख सकें। नौकरानी ढूढ़ने के विषय में सुमंगला अपने भाव इस प्रकार व्यक्त करती है– ''अपने मरे बिना स्वर्ग नहीं मिलने का! नई नौकरी के हौवे के बावजूद उसने हफ्ते भर की छुट्टी लेकर घर के लिए नौकरानी ढूँढने के लिए कमर कस ली और बारह–तेरह नौकरानियों से सम्पर्क साधा।''(3)

'मुआवजा' कहानी में नारी अपने कार्यक्षेत्र में कितनी ईमानदार और साहसी है, चित्रा जी ने इस बात का यथार्थ चित्रण किया है। शैलू एयरहोस्टेस है। आतंकवादियों के द्वारा विमान अपहरण के दौरान यात्रियों को पिछले गेट से निकाल देती है और स्वयं आतंकियों के हाथों मारी जाती है। उसकी ऐसी साहसिक मृत्यु के लिए सरकार द्वारा पुरस्कार दिया जाता है और साथ ही मृतक को दिया जाने वाले मुआवजे की भी घोषणा की जाती है। मुआवजे की खबर सुनकर सालों से शैलू से अलग रहने वाला पति उसे वसूल करने आ जाता है।

जिन अधिकारों से पति ने उसे जीते–जी वंचित रखा, उस पर तरह–तरह के अत्याचार किए। वह मुआवजे की खबर सुनकर अधिकारों व कानूनों की दुहाई देने लगा। लेकिन अपनी बेटी की अभिलाषाओं को अच्छी तरह समझने वाले पिता मुआवजा उसके पति को दिए बिना वनिता आश्रम के लिए देने की तैयारी साहस के साथ करते हैं– ''भूल रहे हैं कि वे उस शैलू के पिता हैं, जिसने न शोषण से समझौता किया, न शोषक से, न अपहरणकर्ताओं से।''(4)

इसी प्रकार चित्रा जी ने 'स्टेपनी' कहानी में भी कामकाजी नायिका आभा की विचित्र परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण किया है। आभा एक कामकाजी स्त्री है तथा उसका पति विनोद भी नौकरी करता है। उसे अपनी छोटी–सी बच्ची को क्रैच में छोड़ना पड़ता है। उसके पीछे उसके घर में बताशा (बाई) घर का काम करने आती है। एक दिन पड़ोसन मिसेज् खन्ना उसके मन में बताशा (बाई) व उसके पति के विषय में शंका उत्पन्न कर देती हैं। जब वह इस विषय में अपने पति से बात करती है तो वह क्रोधित हो उठता है। अन्त में आभा सोचती है– ''शायद कोई विकल्प नहीं है उसके हिस्से। गृहस्थी और आत्मनिर्भरता के मध्य अपने 'स्व' का संतुलन खोजते हुए कब वह अपने ही घर के लिए स्टेपनी हो गयी और बताशा मुख्य चक्का– कौन जाने!''(5)

कामकाजी नारी के संदर्भ में 'ताशमहल' कहानी का दृष्टान्त भी ध्यातव्य है। लेखिका की यह कहानी एक ऐसी दुविधाग्रस्त कामकाजी नारी के जीवन पर आधारित है, जिसने पुनर्विवाह किया है। उसे उसके पति निशीथ ने स्वप्न तो न जाने क्या–क्या दिखाए थे, लेकिन उसके वे सारे स्वप्न ताश के महल की भाँति बिखर गए। शोभना ने प्रथम विवाह असफल होने पर एक संतान (बच्चू) के साथ जीवनयापन करने का निर्णय किया, किन्तु निशीथ के जोर डालने पर पुनर्विवाह किया तथा एक और सन्तान (रोनू) को जन्म दिया। उसने नौकरी के साथ–साथ दोनों बच्चों के पालन–पाषण को जीवन का ध्येय मान लिया; परन्तु निशीथ द्वारा यह कहना कि तुम 'मेरे बच्चे के साथ सौतेला व्यवहार क्यों कर रही हो' उसके मातृत्व पर ही प्रश्न चिन्ह लगा देता है। इस प्रकार शोभना का विचलित मन तबादले पर जाने के लिए तैयार हो जाता है– ''नहीं, यह बात नहीं.... यह तबादले के प्रतिवाद में है नौटियाल.... और अब मैं तबादले पर जाने के लिए तैयार हूँ.....।''(6)

इसी प्रकार 'बावजूद इसके' कहानी की नायिका प्रीति का विवाह जब असफल हो जाता है तो वह अपने मायके में रहकर एक होटल में रिसेप्शनिस्ट का कार्य करने लगती है। कुछ समय पश्चात् होटल का मालिक द्विवेदी उसके सामने प्रस्ताव रखता है कि वह होटल में मेहमानों को इंटरटेन करने का काम करें। प्रीति यह सुनकर इस्तीफा देने को तैयार हो जाती है, लेकिन फिर सोचने लगती है– ''कहाँ–कहाँ से भागेगी? गोयल के लिए नौकरी छोड़ दूँ? लौट जाए?भैया के लिए करती रहे?द्विवेदी। द्विवेदी तो हर दफ्तर के केबिन में मौजूद हो सकता है। लड़ाई खुद की है, फिर?''(7)

'प्रमोशन' कहानी में कामकाजी नारी ललिता अपने पति सुभाष के अंहकार व उसकी कुंठित मानसिकता को करारा जवाब देती है। डॉ0 कोठारी ललिता को नियुक्ति के तीन वर्ष के भीतर ही पैंकिग विभाग का इंचार्ज बना देते हैं अर्थात् उसका प्रमोशन कर देते हैं। उसके पति के कुंठित मन में शंका उत्पन्न होने लगती है– 'डॉ0 कोठारी तुम पर इतने मेहरबान क्यों हैं? तीन साल में इतना बड़ा प्रमोशन कैसे? तब ललिता कहती है– ''पुरूष की पदोन्नति हो, तो वह उसकी लगन और मेहनत का परिणाम है। अपनी लगन और परिश्रम से स्त्री उन्नति करें तो वह उसकी अपनी प्रतिभा नहीं, बल्कि किसी डॉ0 कोठारी की अनुकंपा है और बीच में शरीर आए बिना यह संभव नहीं।''(8) इस प्रकार जब सुभाष उसे घर और नौकरी में से कोई एक चुनने के लिए कहता है, तब ललिता का जवाब था– ''कान खोलकर सुन लो, तुम्हारी कुंठाओं द्वारा रचा हुआ सत्य मेरी नियति नहीं बन सकता।''(9) इस प्रकार चित्रा जी ने अपने कथा साहित्य के माध्यम से कामकाजी महिलाओं के जीवन संघर्ष का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत कर नारी–विमर्श को बखूबी चित्रित किया है।

पुरूष सत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री के संघर्ष को शब्द रूप देने वाली चित्रा मुद्गल साहित्य जगत में एक ऐसी दमदार उपस्थिति है जो स्त्री को लिंगभाव के भेद से मुक्त कर उसे मनुष्य रूप में स्थान दिलाना चाहती है। महिलाओं का लेखन केवल स्त्री–विमर्श से जुड़ा होता है। इस विचार को नकारते हुए उन्होंने उन विषयों पर भी अपनी लेखनी चलाई है, जिन पर आमतौर पर पुरूष लिखा करते हैं।

संदर्भ :

(1) मुद्गल, चित्रा : लाक्षागृह, ट्रेन छूटने तक, पृ0 132. (2) मुद्गल, चित्रा : गेंद और अन्य कहानियाँ, दरमियान, पृ0 108. (3) मुद्गल, चित्रा : चेहरे, सुख, पृ0 85. (4) मुद्गल, चित्रा : चित्रा मुद्गल की लोकप्रिय कहानियाँ, मुआवजा, पृ0 138. (5) मुद्गल, चित्रा : जिनावर, स्टेपनी, पृ0 85. (6) मुद्गल, चित्रा : चेहरे, ताशमहल, पृ0 231. (7) मुद्गल, चित्रा : आदि–अनादि–1, बावजूद इसके, पृ0 126. (8) मुद्गल, चित्रा : चित्रा मुद्गल की लोकप्रिय कहानियाँ, प्रमोशन, पृ0 148. (9) वही, पृ0 149.

UGC Approved Journal
Research Link
Since March 2002
An International, Registered & Referred Monthly Journal : Hindi Literature
Research Link - 166, Vol - XVI (11), January - 2018, Page No. 116-118
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

डॉ.सत्यभामा आडिल कृत 'काला सूरज में प्रतिकार्थ' : एक अध्ययन

प्रस्तुत शोधपत्र में सत्यभामा आडिल कृत 'काला सूरज में प्रतिकार्थ' का अध्ययन किया गया है। कवयित्री के विवेच्य काव्य संकलन में हिन्दी के 12 मास का वर्णन प्रतिकार्थ रुप में किया गया है। उन्हीं का काव्य संकलन 'काला सूरज' ग्रहण लगे सूर्य का द्योतक है। जीवन और संसार में विसंगतियाँ, अभाव, संघर्ष, कोलाहल और पीड़ाएँ व्याप्त हैं। इन सबके बावजूद मनुष्य जीवित है और संसार का भी अस्तित्व है। इन सारे अवरोधों के बावजूद समस्त घेरे को तोड़ता हुआ मनुष्य सूर्य की तरह दीप्त, तेजस्वी और निष्कलंक दिखाई देता है। मनुष्य जीवन के कई पक्षों को मन की अनगिनत परतों को इन कविताओं में अनावृत्त किया गया है। शायद कवयित्री को सूरज का प्रतीक बहुत ही प्रिय है। सूरज की ऊर्जा, प्रकाश, तेजस्विता, सात्विक रंग तथा उदय होते सूरज, अस्त होते सूरज का लाल विरागी रंग भी बहुत आकर्षित करता है।

डॉ.अश्वनी कुमार ध्रुव

प्रस्तुत शोधपत्र में प्रकृति और मानव के संबंध का विश्लेषण किया गया है, क्योंकि मानव प्रकृति की गोद में ही पलकर बढ़ा होता है तथा जीवन की सभी प्रेरणायें भी प्रकृति से ही प्राप्त होती है। मानव कठिन से कठिन परिस्थितियों के समाधान को प्रकृति से ही प्राप्त करता है। प्रकृति प्रारंभ से ही साहित्यकारों का विषय रही है। यह बात दूसरी है कि समय और व्यक्ति के अनुसार उनके दृष्टिकोण बदलते रहे हैं। डॉ. सत्यभामा आडिल के काव्य संकलन "काला सूरज" में हिन्दी के 12 मास का वर्णन प्रतिकार्थ रूप में किया है। डॉ. सत्यभामा आड़िल की काव्य संकलन "काला सूरज" ग्रहण लगे सूर्य का द्योतक है।जीवन और संसार में विसंगतियाँ, अभाव, संघर्ष, कोलाहल और पीड़ायें व्याप्त हैं। इन सबके बावजूद मनुष्य जीवित है और संसार का भी अस्तित्व है। इन सारे अवरोधों के बावजूद समस्त घेरे को तोड़ता हुआ मनुष्य सूर्य की तरह दीप्त, तेजस्वी और निष्कलंक दिखाई देता है। मनुष्य जीवन के कई पक्षों को मन की अनगिनत परतों को इन कविताओं में अनावृत किया गया है। शायद कवयित्री को सूरज का प्रतीक बहुत ही प्रिय है। सूरज की ऊर्जा, प्रकाश, तेजस्विता, सात्विक, रंग तथा उदय होते सूरज, अस्त होते सूरज का लाल विरागी रंग भी बहुत आकर्षित करता है।

सत्यभामा आडिल ने सूरज की किरणों को अपने इर्द–गिर्द बिछा लिया है। जो कि बहुत ही भव्यता के साथ कल्पना को उकेरता है। "काला सूरज" काव्य संकलन में 33 कविताएँ हैं, जिसमें कवयित्री ने सूरज के 33 रूप बताएं हैं। सूरज के विभिन्न प्रतीक स्पष्ट रूप से अर्थ संयोजित करते हैं।

शोषितों के प्रति प्रतिकार्थ :

गरीबों भूखे–नंगों की दृष्टि में ग्रहण लगा सूरज काली जली रोटी के समान है। शोषित समाज के लोग अपनी आवश्यकता की पूर्ति करने में असमर्थ रहते हैं और उसे पूरा करने के लिए हमेशा जूझते रहते हैं। कवयित्री ने इसका सुंदर चित्रण इन पंक्तियों में किया है।

काले तवे पर जल गई रोटी/आहों ने सूरज को जला दिया है/करोड़ों अभावों से जूझता/आंखों की रोशनी खोकर/सूरज अंधा बन गया है।

सामाजिक प्रतिकार्थ–समाज के सदियों से शोषित, अभिशप्त, अछूत कहे जाने वाले वर्ग का प्रतीक जो अपने शोषण के विरूद्ध आक्रामक सा हो गया है।

कवयित्री ने कहा है कि और उसे एक आशा है कि कभी न कभी तो उसके दिल लौट आएंगे। समाज में वह अपनी पहचान बनायेगा और इसी के बलबूते पर वह पूंजीवादी समाज से संघर्ष करने के लिए तत्पर रहेगा।

बिना भेदभाव के सारे धर्मों के दरवाजे को खोलता है, खटखटाता है। यहाँ सूरज सर्वधर्म समभाव का प्रतीक बताया गया है। कवयित्री ने दस कविता में सर्वधर्म समभाव की भावना को चित्रित करने का प्रयास किया है। जिसमें जाति, भेद, छोटे–बड़े, अमीर–गरीब, छूत–अछूत इन सबसे अलग मानवता को सर्वश्रेष्ठ बताया गया है, जिसमें हिन्दू धर्मस्थली गंगा मैया में मुस्लिम धर्म गुरू इमरान अली के गीत रामचरित मानस के रूप में गूंजते हैं :

उसी दिन/बहुत दूर "झलमला" में /"गंगा मैया" की गोद में/इमरान अली गा रहा था/सुरीली आवाज में/तुलसी के पदमानस की चौपाइयां/विनय के पद/उसके "अब्बा" तन्मय थे/देवी मंदिर का जनमानस/भाव विभोर, मुग्ध था/गायन अप्रितम था।

धर्मग्रंथ एवं पथ से बड़ा मनुष्य होता है। मन सबका एक है, वह विभाजित नहीं होता। मनुष्य ही मनुष्य को अलग करता है। न्यथा एक माँ की कोख और एक ही धरती की गोद!!!

सहायक प्राध्यापक (हिन्दी विभाग), शासकीय सुखराम नागे महाविद्यालय, नगरी, जिला-धमतरी (छत्तीसगढ़)

बालक के रूप में प्रतिकार्थ : कवत्रियी ने सूरज को बच्चे की तरह निष्कलंक, निश्चल व निःस्वार्थ बताया है। जन्म से एक वर्ष तक जिस तरह एक बच्चा उलटना–पलटना, घिसटना, रेंगना, चलना, दौड़ना, सीख जाता है। उसी तरह सूरज का कृत्य बालक के शारीरिक व मानसिक विकास की तरह रहता है। अर्थात् नवजात सूरज बालचित्र है। हर माह किस तरह के बच्चों की तरह अपनी गतिविधियाँ बदलता है। भूख से बिलखते, ठंड से ठिठुरते, चीथड़े कपड़े, बिखरे बाल वाले बच्चे जब सुबह उठते हैं, तो अपनी दिनचर्या में शामिल नित्यकर्म भूख की आग मिटाने के लिये कटोरा लेकर चौराहे घर–घर में दौड़ पड़ता है। कवयित्री ने ऐसे बच्चे का चित्रण किया है, जिसका काम केवल पेट की भूख मिटाना है। उसका सूरज के उदय और अस्त होते रूप सौंदर्य से कोई सरोकार नहीं है।

दसों दिशायें मेरी हैं/सुबह–शाम गेरूआ वस्त्र पहन/कुछ न हो पाने,या/सब कुछ हो जाने का/आभास दिलाता हूँ/मैं विद्रोही अपाद मस्तक/चुनौती से भरा/खड़ा हूँ सामने/ गरीबी, भूख, अज्ञान, विषमता।

इसमें कवियित्री ने शाम को ढ़लते हुये सूरज की उपमा गेरूआ वस्त्र धारण किये साधु से की है। जो तपस्वी का प्रतीक है और वह गरीबी, भूख, अज्ञानता, विषमता से लड़ता है। परिवाज्रक बना होता है, तपस्वी जिसकी दुनिया में कुछ न होते हुए भी सब कुछ उसी का है।

धार्मिक प्रतिकार्थ : देश में जाति, धर्म, संप्रदाय के लोगों को समान अधिकार प्राप्त है। सूरज की किरणें भी सभी पर समान रूप से पड़ती है। फिर भी आज धर्म और साम्प्रदायिकता के नाम पर दंगे हो रहे हैं। आज भी अछूतों पर अत्याचार हो रहे हैं, उनके मंदिर प्रवेश पर रोक लगी हुई है। सूर्य यह सब देखकर भी चुप है और बादलों की ओट में छिप जाता है। कवयित्री सूरज से प्रश्न करती है कि इतना सब होते हुए क्यों चुपचाप है। क्यों नही अपनी तेज किरणों से अत्याचारियों को जला नहीं देती ?

मंदिर के बरामदे में खड़ा हो गया/वह अनुसूचिज जनजाति का/महार कहा जाता/यही दोष था/पता लगते ही/दौड़ा आया समूचा गाँव/लग गई प्रतिष्ठा की दांव/पत्थरों से मार–मार कर/अंतोगत्वा/पड़ गया मृत्यु का पांव सूरज

कर्मयोगी के रूप में प्रतिकार्थ : लाई अर्थात् प्यारी सी वस्तु, प्रेम, आहलाद, हंसी का प्रतीक यही स्वरूप है सूरज का एक प्यारा सा पारिवारिक प्रेम जो मनुष्य से लेकर पक्षियों तक में होता है। सूरज की पहली किरण के साथ ही मानव और मानवोत्तर जीव नई स्फूर्ति और नए उमंग से अपनी दिन की शुरूआत करते हैं, पक्षी डालों पर चहकने लगते हैं। कर्मयोगी अपने कार्य में निकल पड़ता है। इस प्रकार सूरज की प्रातः किरणों के बिखरने को कवयित्री ने लाई के बिखरने से की है। लाई के रूप में सूरज यहाँ सुख, शांति, समृद्धि और खुशहाली लेकर आता है।

सूरज मानो बाजार लगाकर बैठता है। वह नई रोशनी के साथ नई आशा, खुशी, स्वपन लेकर आता है। और रात्रि के अंधकार, दुख, दर्द और बुरे स्वप्नों को दूर करता है। सूरज वर्तमान में जीता है और भविष्य की ओर बढ़ता है। उसकी रोशनी का इंतजार करता है, क्योंकि यह नई खुशियों का बाजार लेकर आती है।

कूटनीतिज्ञ प्रतिकार्थ : सूरज को कवयित्री ने यहाँ एक कुशल कूटनीतिज्ञ माना है। जो कभी बादलों को बेधता है, तो कभी तेजी से दौड़ता हुआ, कभी रंग बदलता सिंहासन की लड़ाई सूरज इसमें शामिल है। कवयित्री ने सूरज को एक बंधक के रूप में देखा है। जैसे किसी को बांधकर रख दिया जाये। एक निश्चित सीमा तक उसी तरह वह कभी बादलों में घिरकर या कई मंजिले भवन के पीछे छिप जाता है।

कवयित्री सूरज की रोशनी और उजाले की तरह अमरता की कामना करती है। मृत्यु का वरण करना नही चाहती है। सूरज सा जीवन चाहिये, जो किरणों के खूबसूरत क्षणों का जाल बुनती है। वह सूर्य के शतायु, जीवन का उधार मांगती है।

वैचारिक प्रतिकार्थ : महानगर को शोर आपाधापी समय कि कमी, समय बीत जाने का भान नही होता। महानगर की जीवन इतनी अधिक तीव्र गति से चलता है कि जनता को यह मालूम नही हो पाता कि कब सुबई हुई और कब शाम। धुल का गुबार लिए सुबह–सुबह जब अपने कामों पर निकलता है, फिर फाइलों के बीच सुबह से शाम हो जाती। सूरज कब आया ? कब गया ? यह सिर उठाकर देखने तक का समय नहीं होता है। यह सब कविता में बहुत ही खूबसूरत शैली में दर्शाया गया है। यह कविता शिल्प का उत्कृष्ट नमूना है :

राजधानी/दिन और रात का एक ही छाता है/जमीं का जहर फैलता ही जाता है/दिन फाइलों से कम लंबे/रात फाइलों से कम छोटी/रात दुबकी सी/रात दुबकी सी/दिन फुदकता सा/परंपरा तोड़ता सूरज

गैर परंपरावादी प्रतिकार्थ : संसार की सड़ी–गली परंपराओं, रूढ़ियों और सदियों से चले आ रहे नियम को तोड़ता हुआ सूरज बादलों के घेरे से बाहर निकल पड़ता है। जनता की पीड़ को ग्रहण की तरह मानों ओढ़े हुये कंबल की तरह फेंक देता है। वह झटके से आगे बढ़ता हुआ लोगों के जख्त भरता है और कहा है कि – ***सूरज परपंरा में बंधा/खड़ा था, चला था अकेला/तभी ग्रहण लगा था, अब वह जन के साथ/एक साथ झेलेगा पीड़ा/हम सबके साथ हैं सूरज।***

इस कविता में सदियों के अत्याचार को मूक होकर देखता हुआ सूरज विद्रोहात्मक स्वर में आक्रामक होकर बोलता है। मैं शक्तिशाली हो गया हूँ।

सूरज नदी की धार की तरह सिर्फ बहता रहे, चलता रहे, ऐसी कल्पना की कामना की गई है। सूरज का अस्त होना, समुद्र में डूब जाना राजा के अहंकार के चूर–चूर होने के समान है। कवयित्री सूरज का ऐसा रूप देखना नहीं चाहती है। इसलिए कवयित्री सूरज को हमेशा आकाश में विद्यमान रहना चाहती है।

आत्मज सूरज : मन के भीतर की इच्छा को साकार करने वाला सूरज ही आत्मज है। जो सभी को खुशहाल और हरा भरा देखना चाहता है। विषम परिस्थितियों में भी वह अभिमन्यु की तरह चक्र को बेधता हुआ बादलों और वर्षा ऋतु से संग्राम करता हुआ विजयश्री को प्राप्त करता है। यह परहितकारी यश प्रदान करने वाला दुखों को दूर करने वाला, दूसरों को राह दिखाने वाला आत्मज सूरज ही है।

यहाँ बांसुरी प्रतीक रूप में उसकी प्रिया है, उसी प्रिया की तरह सूर्य की प्रिया हवा है। जो सूरज से मिलने के लिए इठलाती और मचलती है। सूरज के अत्याधिक प्रेम के कारण वह सिरचढ़ी और बिगड़ैल हो गयी है। हर मौसम में अपना अलग राग अलापती है और सूर्य से शाश्वत प्रेम करती है। जैसे ही सूर्योदय होता है सूरज की रोशनी चारों ओर फैलती है, तो प्रकृति खिल उठती है। चारो ओर आनंद ही आनंद छा जाता है। सारी सृष्टि मोहाविष्ट होकर कार्यरत हो जाता है।

शल्य प्रतिकार्थ के रूप में : सूरज मानो समस्त शारीरिक, मानसिक रोगों की चिकित्सा करता है। समय पर फसलें देकर वर्षा करके और समय पर बहार लाकर जीवन को खुशहाल बनाता है। इसीलिए सूरज को धन्वंतरि कहा गया है :

दिन भी रात बन जाती है/रात तो अंधियारी होती है।/वीर पुरूष योद्धा की तरह/विचरने लगते हो!/यह मीठी धूप धीरे– धीरे कड़ी धूप बन गई/पसीने की बूंदे ढुलक गई/अकेलापन फिर तुम्हे खलने लगा/तू बरखा लगी जाने/पर तुमने दृष्टि नहीं फेरी/क्योंकि/ओ, अहरी/तुम पीछे/कहां देखते हो ?/पूरब से पश्चिम चलते ही जाते हो!/तुम्हारा तोष, घोष बन जाता है।/क्वार का चंदोवा पुरा छा जाता है !!

परिवारिक परिदृश्य :दर्प रहित गृहस्थ के रूप में सूरज की कल्पना की गई है, क्योंकि एक सद्गृहस्थ घर से बाहर कम ही रहता है। अपने भरे–पूरे परिवार के हित के चिंतन सूरज का प्रतिकार्थ है और शीघ्र अस्त हो जाता है, क्योंकि कार्तिक मास में सूरज देर से निकलता है। कार्तिक मास भारतीय संस्कृति कर प्रतीक है। इस समय खलिहान अनाजों से भरे रहते हैं। किसानों के चहरे खिले रहते हैं। खुशी के इस माहौल में सूरज पलक झपकते ही चला जाता है। यहाँ कवयित्री ने गृहस्थ जीवन का सुंदर चित्रण किया है, जो कार्तिक मास आने पर प्रातः सूर्योदय के पूर्व नदी में महिलाओं द्वारा दीपदान किया जाता है। घायल सूरज का वर्णन किया जाता है।

वियोगी के रूप में : घायल सूरज वियोगी के रूप में सूरज की कल्पना की गई है। अगहन मास में बादल रूई के फाहे की तरह उड़ते है। और सूरज ढका–ढका सा रहता है। वर्षा रूपी प्रिया के लिए तड़पता रहता है। मानो प्रेम में घायलों हो गया हो। अंदर ही अंदर घुलता रहता है।

अगहन मास में/सूरज/गहरा जाता है।/थोड़ा ढ़ीला हो जाता है/कुछ पीला हो जाता है। अलसाया सूरज/स्वभाव से नरम/मुंह फुलाया सूरज।

शीतकालीन परिदृश्य : पूस मास में अत्यधिक शीत के कारण जब सूरज ठंड से ठिठुरने लगता है। तब बादलों मानो कई कंबल बनकर सूरज को ढक लेता है, जैसे मानो दुलार से पिता अपने ठिठुरते पुत्र को गर्म कपड़ों से ढक लेता है। वह बांबी की सर्प की तरह अंदर घुस जाता है और दिखाई नहीं देता, किंतु जनमानस को सूरज के आने की प्रतीक्षा रहती है। उसके आते ही लोग घरों से बाहर निकलकर सूरज की गर्मी को आत्मसात कर लेते हैं और उसके चले जाने पर अपने घर के दरवाजे खिड़की बंद कर कंबल और रजाइयों में घुस जाते हैं।

बसंतकालीन परिदृश्य : कवयित्री ने माघ मास में सूरज का वर्णन किया है। माघ मास में प्रकृति सूरज की उजली किरणों से पुष्पित और पल्लवित होता है। पिता की तरह सूंपर्ण प्रकृति को परिष्कृत करता है यह सूरज! इस समय सूरज धरती फूली नहीं समाती। चारों ओर प्रकृति फूल–फल से लदी होती है और हरियाली छाई हुई होती है। पेड़ों से पीले पत्ते झड़ने लगते हैं। नई कोपलें फूटती है। मानों सूरज नई कोपलों को पिता की तरह दुलार संवार रहा है। इसलिए सूरज को पिता कहा गया है।

सूरज,/तुम्हारा, दुलार/तुम अपने उपजाए/फूलों, फलों को, पुष्पित/पल्लिवत होते देखते हो/कितने गर्वित हो सूरज।/तुम्हारा गर्व, मद/धरती तो फूली नहीं समाती/तुम पिता हो सूरज!

फागुन में सूरज अभिभावक की तरह प्रौढ़ होता है और दोहर दायित्व को निभाने वाला अनुशासित दिखाई देता है। फागुन में सूरज की किरणें तेज हो जाती है, जिसे देखकर कवयित्री के मन में सूरज के लिये अभिभावक की कल्पना आकार लेती है। जिस प्रकार पिता अपने बच्चों से प्रेम करता है और शाम होने पर उसे बाहर नहीं जाने देता।

सूरज की तेल दृष्टि में स्निग्धता है/पर गोधूलि के बाद, हाथ खींच लेता है/क्योंकि उच्छृंखला उसे रास नहीं/वह पिता अभिभावक है/दायित्व दोहरा है!/सूरज/बारह मासों के अमर सर्जक/तुम्हें प्रणाम !!

ग्रीष्मकालीन परिदृश्य : सूर्योदय के साथ ही सूरज की तेज रोशनी के बीच संसार में मानो विविध तरह की आकर्षित वस्तुओं वाला बाजार शुरू हो जाता है। कई रंगों के वस्त्र पहने बच्चे व महिलाएँ, विविध प्रकार के पकवानों की तरह अलग–अलग तेवर वाले अलग–अलग भाषा वाले मनुष्यों की तरह पूरा संसार लुभावना और माया से ग्रस्त लगता है।

सूरज/तुम्हारी दुकान के पकवान/हर रंग में सजे/अलग–अलग स्वाद ढले/ग्राहकों को लुभाते पर/तुम अचानक/सतरंगी साड़ी फैलाने लगते/तब बच्चे और लुगाइयां।/तुम्हारा प्रदर्शन देखने दौड़ती,/लुभा लुभा कर सबसमेट लेते/हो तुम एक नंबर के फरेबी/मायावी!

तीखे ग्रीष्म के बाद होने वाली वर्षा को पितरों को दिया जाने वाला तर्पण जल कहा गया है। पितरों को तर्पण देने से, जल देने से जिस तरह पितर सुखी होते हैं, और अपने वंशजों को भरपूर आर्शीवाद देते हैं। परिवार को सुख देते हैं। वैसे ही वर्षा के जल से सिंचित भूमि पर फसलें लहलहाती हैं और संसार तृप्त होता है। कभी–कभी अकाल की काली छाया, अल्पवृष्टि के कारण धरती पर सूखा पड़ जाती है। तब कहीं भी सूरज रूपी रोटी नजर नहीं आती। सूरज ने तर्पण किया, यह अफवाह अमरबेल बन जाती है और अमरबेल सबका रस सोख लेती है।

संदर्भ :

*(1) आडिल, डॉ.सत्यभामा : काला सूरज, मुक्तधारा प्रेस एण्ड पब्लिकेशन्स। **(2)** आडिल, डॉ.सत्यभामा : दस्तक देता सूरज मुक्तधारा प्रेस एण्ड पब्लिकेशन्स।*

❁ ❁

UGC Approved Journal
Research Link
Since March 2002
An International, Registered & Referred Monthly Journal : Hindi Literature
Research Link - 166, Vol - XVI (11), January - 2018, Page No. 119-120
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

विवाह - एक राजनीतिक छद्म : शंकर शेष कृत 'कोमल गांधार' नाटक के विशेष संदर्भ में एक अध्ययन

प्रस्तुत शोधपत्र शंकर शेष के मिथकीय नाटक 'कोमल गांधार' के अध्ययन पर आधारित है। विवेच्य नाटक गांधारी के माध्यम से एक स्त्री के जीवन-संघर्ष की गाथा है, जिसमें स्त्री के अस्तित्व, उसके व्यक्तित्व की समस्या को उठाया गया है। गांधार नरेश अपनी बेटी गांधारी का विवाह हस्तिनापुर के अंधे राजा धृतराष्ट्र के साथ तय कर देते हैं। धृतराष्ट्र उच्चकुल में जन्मे राजकुमार हैं। इससे अधिक गांधार नरेश को कुछ नहीं चाहिए। यह तो नारी का दुर्भाग्य है कि उसे अपने विषय में कभी निर्णय नहीं लेने दिया गया। यह राजनीति प्रधान एक पौराणिक नाटक है, जो भीष्म के माध्यम से आधुनिक राजनेताओं के चरित्र को प्रतीकात्मक रुप में उद्घाटित करता है।

कोशिका शर्मा

विवाह एक ऐसा संस्कार है, जिसमें स्त्री–पुरुष दोनों मिलकर समाज के विकास में सहायक होते हैं। इन दोनों में से एक के बिना जीवन रूपी गाड़ी को चलाना मुश्किल है, अर्थात् दोनों अपने–अपने स्तर पर विशेष महत्व रखते हैं। अतः समाज में स्त्री–पुरुष दोनों का ही अस्तित्व समान है। लेकिन हमारा भारतीय समाज एक ऐसा समाज है, जहाँ पति सदैव पत्नी से ऊँचा दर्जा प्राप्त किए हुए है। जहाँ पति ईश्वर और पत्नी दासी है। दोनों को बराबरी का दर्जा नहीं दिया जाता।

शंकर शेष का 'कोमल गांधार' नाटक महाभारतकालीन मिथकीय कथा पर आधारित है। नाटक गांधारी के माध्यम से एक स्त्री के जीवन–संघर्ष की गाथा है, जिसमें स्त्री के अस्तित्व उसके व्यक्तित्व की समस्या को उठाया गया है। गांधार नरेश अपनी बेटी गांधारी का विवाह हस्तिनापुर के अन्धे राजा धृतराष्ट्र के साथ तय कर देते हैं। धृतराष्ट्र उच्चकुल में जन्मे राजकुमार हैं। इससे अधिक गांधार नरेश को कुछ नहीं चाहिए। यह तो नारी का दुर्भाग्य है कि उसे अपने विषय में कभी निर्णय नहीं लेने दिया गया।

यह राजनीति प्रधान एक पौराणिक नाटक है, जो भीष्म के माध्यम से आधुनिक राजनताओं के चरित्र को प्रतीकात्मक रूप में उद्घाटित करता है। इस नाटक की समस्त समस्याएँ भीष्म से संबंधित हैं, जो कि आधुनिक राजनेताओं का प्रतिनिधित्व करता है। समस्याओं को हल करने के लिए भीष्म गांधारी को माध्यम के रूप में इस्तेमाल करते हैं, क्योंकि उनके लिए महत्त्वपूर्ण व्यक्ति नहीं बल्कि राजनीति है। पुरुषों द्वारा बनाये गए नियम समाज हित को आधार मानकर नहीं, बल्कि राजनीतिक हितों को आधार मानकर बनाये जाते हैं। क्योंकि उन्होंने सत्ता चलानी है, उस पर किसी दूसरे का वर्चस्व हो ही नहीं सकता। राजनीतिक स्वार्थ की पूर्ति के लिए भीष्म जैसे पुरुष अपनी सोच को संकीर्ण बना लेते हैं। गांधारी को लेकर हस्तिनापुर की ओर रवाना होने के समय तक भीष्म को यह भय सताता रहता है कि कहीं संजय के मुख से सत्य न निकल जाए। पूरे विवाह–समारोह में एक संजय ही विपक्ष की भूमिका में है, किन्तु राजसत्ता से जुड़ा होने के कारण गांधारी को धृतराष्ट्र के अंधेपन की बात स्पष्ट रूप से नहीं बता सकता। प्रखर बुद्धिजीवी संजय जब भीष्म से इतने बड़े अन्याय की संगति के विषय में जिज्ञासा प्रकट करता है तो वह इस की संगति में यह कहते हैं, "अगर व्याख्या जरूरी है, तो इसे राजनीति कहो।"[1] अर्थात् यह विवाह राजनीतिक कारणों से हो रहा है और राजनीति में सब न्यायिक है। नाटक गांधारी के माध्यम से पुरुष जाति की संकीर्ण मानसिकता को दर्शाता है और साथ ही राजनीति के नाम पर नारी के शोषण, उसके उत्पीड़न की गाथा है, जिसमें पिता भी पुत्री को एक सशक्त व्यक्ति के हाथों बेचने को तैयार है। राजनीतिक दृष्टि से कमजोर राजा सुबल अपनी पुत्री का विवाह एक अंधे से कर अपने आप को महान मान लेता है। भीष्म के लिए इस विवाह का अर्थ केवल दो शरीरों का है। संजय यह कभी नहीं चाहते गांधारी का धृतराष्ट्र से विवाह हो, "राजनीति मनुष्य की अस्मिता को निगल जाए यह मुझे स्वीकार नहीं।"[2] संजय का यह कथन थोथी राजनीति को बेनकाब करता है, किंतु सत्ता के आगे किसी की नहीं चलती। जिस राजनीति से दूसरों के अधिकारों का हनन हो, जो दूसरे के अस्तित्व को मिटाये ऐसी राजनीति समाज को एक अच्छा भविष्य कभी नहीं दे सकती।

अक्सर देखा गया है कि जब कोई दुर्घटना अचानक होती है, तो हम उसे विधि का खेल मानकर स्वीकार कर लेते हैं, लेकिन सामूहिक रूप से किसी को फांसकर जब किसी विशिष्ट स्थिति को उत्पन्न किया जाता है, तब भी व्यक्ति अपनी गलतियों को नहीं स्वीकारता यह मानव स्वभाव है। गांधारी की स्थिति ठीक वैसी ही है, उसके साथ जो भी हुआ वह कोई विधि का खेल नहीं है, बल्कि समस्त हस्तिनापुर के पुरुषों ने उसके खिलाफ षड्यन्त्र रचा। अपने विरुद्ध षड्यन्त्र को जानकर उसका मन दुखी होता है और वह दुःख क्रोध में बदल जाता है। व्यक्ति की असली समस्या सत्ता को हासिल करना है, फिर उसे किसी भी तरीके से क्यों न हासिल करनी पड़े, वह करता है। मनुष्यता से उसका कोई लेना देना नहीं है। संजय राजनीति की इस क्रूरता से भली–भांति परिचित है। वह जानता है कि यह राजनीति

शोधार्थी (हिन्दी साहित्य), जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू (जम्मू-कश्मीर)

ही है जिसे भीष्म कर्त्तव्य का नाम देकर अपनी समस्याओं को सुलझाना चाहते हैं। संजय के संवाद से यह स्पष्ट हो जाता है, "तो आपकी असली समस्या है राजनीति, मनुष्य नहीं।"(3) गांधारी स्त्री है और भीष्म जैसे पुरुषों के लिए वह कोई महत्व नहीं रखती। वह राजपुरुष हैं, उन्हें सत्ता की राजनीति के समक्ष सब बौने दिखते हैं।

संजय महाभारत का सजग पात्र है जो प्रत्येक घटना/दुर्घटना का चश्मदीद गवाह है और नाटक में आधुनिक व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करता है। वह मानवाधिकारों से भली–भांति परिचित है, विवेकशील होते हुए भी नैतिकता, मर्यादा और सत्य को खंडित होता हुआ देखता है। सत्ता सत्ता ही होती है वह चाहे भीष्म की हो या किसी ओर की। संजय इसी सत्ता के दबाव में अपने अस्तित्व को पहचानने की कोशिश में खंडित और जर्जर है, ठीक आज के व्यक्ति की तरह। एक तरफ सत्ता का दबाव उसे कुछ नहीं करने देता दूसरी तरफ उसकी आत्मा उसे सत्य कहने के लिए प्रेरित करती है। इस विवशतावश वह गांधारी को कहता है, "उस शिला को प्रणाम करो शायद अंतिम प्रणाम।"(4) इन शब्दों के पीछे छिपी सच्चाई को वह व्यक्त नहीं कर पाता कि वह दोबारा गांधार लौट कर नहीं आयेगी। आखिर में युद्ध के मैदान में जब गांधारी के सभी पुत्रों की मृत्यु हो जाती है, तो उसके पुत्रों की मृत्यु का समाचार वह गांधारी के समक्ष कैसे कहेगा। यह चिंता उसे परेशान कर देती है। उसका अर्न्तद्वन्द्व इस प्रकार प्रकट होता है, "आज वही धर्मसंकट, कहूँ या न कहूँ।"(5)

किसी भी लड़की के सामाजिक स्थान का निर्णय केवल इस बात पर निर्भर करता है कि वह विवाहित है या नहीं। शुरू से ही लड़की के कानों में यह बात डाल दी जाती है कि बड़े होने पर उसे किसी दूसरे के घर जाना है, वह पराया धन है आदि। उससे अपने जीवनसाथी को चुनने का हक भी छीन लिया जाता है। पितृसत्ता के अनुसार उसे कुछ जानने समझने की जरूरत नहीं है। भी म के अनुसार गांधारी को अपने पति के बारे में कुछ भी जानने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उनको गांधारी के अन्धे भविष्य से कोई फर्क नहीं पड़ता। उनके लिए महत्वपूर्ण है राजनीति। धृतराष्ट्र और भीष्म के संवाद से उपरोक्त कथन को स्पष्ट किया जा सकता है :

"धृतराष्ट्र : मेरे अंधेपन की बात आपने गांधारी से क्यों नहीं कही? भीष्म : जरूरत नहीं समझी।"(6)

राजकीय अधिकारी हमेशा से ही अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए दूसरों पर अत्याचार करते आये हैं। बलशाली शासक सदैव कमज़ोर को नीचा दिखाने में तत्पर रहता है। हस्तिनापुर राज्य के समक्ष गांधार राज्य बहुत छोटा था। छोटे राज्य में इतना साहस ही कहाँ कि वह भीष्म जैसे व्यक्ति की बात का विरोध कर सके। संजय, भीष्म पितामह को उनकी तानाशाही सामन्ती प्रवृत्ति के कारण हुए गांधारी –धृतराष्ट्र के विवाह का सत्य निम्न संवाद में व्यक्त करते हैं :

संजय : अब समझा हस्तिनापुर से इतनी दूर की कन्या क्यों चुनी आपने।

भीष्म : दूसरा कोई उपाय नहीं था।

संजय : और गांधार जैसा छोटा राज्य आपकी बात टालने का साहस भी कैसे बटोर पाता।"(7)

आज के समय में भी जो राजनीति हमें देखने को मिलती है, उसके पीछे शासकों की सोच निजी कल्याण की है। हज़ारों साल की प्रवृति उनके खून में रम गई है। यही कारण है कि आज भी देश में राजनीतिक षड्यंत्रों के कारण वर्तमान समय की दयनीय स्थिति हमारे सामने है। जैसे–जैसे सम्पत्ति पर पुरुष का अधिकार होता गया, वैसे–वैसे परिवार के अंदर नारी की तुलना में पुरुष का दर्जा ज्यादा महत्वपूर्ण होता गया। पुरुष के मन में यह इच्छा और मजबूत होती गई कि कैसे अपने शक्ति को बनाये रखना है और कैसे स्थिति का लाभ उठाकर स्त्री से उत्तराधिकार पैदा कर अपना वर्चस्व स्थापित करना है। भीष्म के अनुसार गांधारी के साथ हुए अन्याय को वह जल्दी ही भूला देगी। संजय का भीष्म को पूछा गया सवाल, "राजनीति से बाहर कुछ नहीं?"(8) समूची पितृसत्ता से यह प्रश्न करता है। अनैतिक तरीकों का इस्तेमाल करके दूसरों का फायदा उठाना राजनीति की यह पुरानी परंपरा है।

पितृसत्तात्मक वर्चस्व के स्थापित हो जाने से पुरुषों ने जो पहला काम किया, वह था सम्पत्ति या पूंजी का उत्तराधिकारी अपने पुत्रों को बनाना। पुत्री को बराबरी का हिस्सा तो क्या मामूली सा हिस्सा भी न मिला। पितृसत्ता ने सदैव अपनी शक्ति, संपति और सत्ता का गलत इस्तेमाल अपने निजी स्वार्थ और आत्म तुष्टि के लिए किया। उसकी शक्ति और सत्ता पर कोई हमला न बोल दे इसके लिए वह दिन–प्रतिदिन दूसरों को कैसे नीचे गिराना है, इसके लिए षड्यंत्रों का जल बिछाता गया। इसके लिए उसने नारी को साधन बनाया। सत्ता को पाने के लिए उसमें इतनी बर्बरता आ गई है कि उसने दूसरों पर अन्याय करना अपनी आदत बना ली है। आलोच्य नाटक में भीष्म धृतराष्ट्र से दासी के संबंध को लेकर चिंतित है। उसे डर है कि कहीं उससे पुत्र पैदा न हो जाए। क्योंकि यदि ऐसा हो गया तो सत्ता पर उसका अधिकार हो जाएगा, जोकि भीष्म कतई नहीं चाहते। संजय भीष्म को उसके डर से परिचित कराता हुआ कहता है, "फिर डराने लगा आपको कुरुवंश का भविष्य, भविष्य की उलझा देने वाली राजनीति।"(9) आज का व्यक्ति भी निजी स्वार्थी में इतना उलझ गया है कि उसने मानवता को भूला ही दिया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि विवाह जैसे पवित्र बंधन को भी पुरुष वर्ग ने अपने स्वार्थों की पूर्ति का एक साधन बना लिया है। कभी उसकी देह पर अपना आधिपत्य जमाने के लिए, कभी उससे संतान उत्पन्न कर सत्ता को हथियाने के लिए, तो कभी उस पर पूर्ण रूप से नियंत्रण करने के लिए। गांधारी का विवाह एक राजनीतिक षड्यंत्र है। राजनीतिक छल को विवाह का नाम देकर पुरुषसत्तात्मक समाज वर्षों से नारी को मूर्ख बनाता आ रहा है। पुरुष वर्गों द्वारा विवाह के निर्धारित नियमों को स्त्री भी सहज रूप से स्वीकार कर लेती है। उसके लिए विवाह की वही परिभाषा है, जो पुरुष उसे बताता है। विवाह करने के पीछे उसके कई स्वार्थ रहते हैं। कोई पुरुष वंश बढ़ाने हेतु विवाह करता है। कुछ के लिए अपनी काम–वासना को शांत करने के लिए विवाह एक आसान रास्ता बन जाता है। कुछ पुरुषों को घर–बाहर संभालने के लिए एक स्त्री की जरूरत पड़ती है। कुल मिलाकर पुरुष वर्ग के लिए विवाह एक ऐसा रास्ता है, जिससे वह अपने जीवन को सुखमय बना सकते हैं और अपने सारे स्वार्थों की पूर्ति कर सकते हैं। स्त्री कितनी भी प्रभावशाली क्यों न हो, असल जिन्दगी में उसे घृणा और तिरस्कार का शिकार होना ही पड़ता है। स्त्री के हित में यही है कि वह अपनी पम्परागत सोच को बदले। पुरुषों द्वारा थोपे गये फैसले और विचारों को अपना कर्त्तव्य न समझे। नारी को अपनी सोच को पैतृक दायरों से मुक्त करना होगा।

संदर्भ :

*(1) शेष, शंकर : कोमल गांधार, पृ. 14. **(2)** वही, पृ. 16. **(3)** वही, पृ. 20. **(4)** वही, पृ. 11. **(5)** वही, पृ. 66. **(6)** वही, पृ. 42. **(7)** वही, पृ. 15. **(8)** वही, पृ. 19. **(9)** वही, पृ. 43.*

❁❁

UGC Approved Journal
Research Link
Since March 2002
An International, Registered & Referred Monthly Journal : Hindi Literature
Research Link - 166, Vol - XVI (11), January - 2018, Page No. 121-122
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

हिन्दी सिनेमा में रीमिक्स गीतों का दौर : एक अध्ययन

प्रस्तुत शोधपत्र, हिन्दी सिनेमा में रीमिक्स गीतों के दौर का अध्ययन किया गया है। पुराने गानों को नये तौर-तरीके, आवाज और अंदाज में तैयार करने का समय चल रहा है। इसका उद्देश्य यह है कि मूल रुप से लिखे गए गानों और उनके भावों, विचारों और सौन्दर्य से नई पीढ़ी परिचित हो, वह सिनेमा के गीतों में विचारों का मूल्य समझे। यूं भी आज के दौर में पुराने गाने पूरी तन्मयता से सुने जाते हैं। रीमिक्स बनाने के पीछे यह भी उद्देश्य है कि पुराने समय में ये सुविधाएँ जो आज हैं, उपलब्ध नहीं थी। नये साज और अंदाज में रीमिक्स किये गये गाने कलात्मकता के साथ अपने मूल सौन्दर्य को प्रस्तुत करने में सक्षम हों, इसका भरपूर प्रयास किया जाता है। सुप्रसिद्ध गीतकार जावेद अख्तर कहते हैं कि, मुझे रीमिक्स गाने पसंद नहीं है। हालांकि यह एक लोकतांत्रिक समाज है, इसलिए यहाँ किसी को कुछ भी करने की आजादी है। पर मेरा मानना है कि पुरानी चीजों को वैसा ही रहने दें, जेसी वे हैं और नई चीजें बनाएँ।

शालिनी सिंह

गीत–संगीत हमारी परम्पराओं, संस्कार और दैनिक जीवन में इस प्रकार रच–बस गए है कि इनके बिना हम अपने किसी भी आयोजन को अधूरा मानते है, हमारे यहाँ गीत जन्म, विवाह, मरण आदि अवसरों पर अलग–अलग प्रकार के कभी सुख के तो कभी दुःख, हँसी–ठिठौली के गीत आसानी से मिल जाते है और यदि बात फिल्मों की हो तो गीतों के बगैर तो फिल्में वैसा ही है जैसे बिन पूनम के चाँद। चाहे घर हो या बाजार, ट्रेन का सफर हो या बस का, गीतों के बिना तो जैसे सब कुछ अपूर्ण लगता है। पहली बोलती फिल्म 'आलमआरा' के 'दे दे खुदा के नाम पर' से लेकर आज तक न जाने कितने गीत बन चुके है और आज भी बन रहे है परन्तु नब्बे के दशक के उत्तरार्द्ध और 21वीं सदी के आरम्भिक वर्षों से एक नया ट्रेंड शुरु हुआ है। पुराने गीतों के साथ कुछ–कुछ परिवर्तन करके उन्हें पुनः बाजार में उतारा जाने लगा। इन परिवर्तित गानों की तो जैसे युवा पीढ़ी दीवानी हो गई। विवाह–समारोहों, पार्टियों की ये गीत जान बन गए। ऐसे गानों की कैसेट्स व सी.डी. ने बाजार में खूब बिक्री की। यह काल था रीमिक्स गीतों का, जिनका आज एक वृहद् बाजार तैयार खड़ा है। बने–बनाए और चर्चित गीतों में कुछ मामूली फेरबदल करके नए ढंग के गीत तैयार किए जाने लगे और सबसे मजेदार बात यह है कि इन गीतों के निर्माण में न अधिक समय लगता है, न ही श्रम और न ही संगीत–विशारद् होने की आवश्यकता है।

''रीमिक्स की दुनिया को इस तरह थोड़ा समझना आसान होगा। जो व्यक्ति पुराने गानों में बदलाव करके बनाए गए नए गानों को अपने नाम से बेचता है, वह इस रीमिक्स कल्चर का प्रड्यूसर है, जो लोग मौलिक रुप से पुराने गानों में किए गए ऐसे बदलावों को चटखारे लेकर पसंद करते है, वे इस रीमिक्स कल्चर के उपभोक्ता है। आज ऐसे प्रड्यूसरों और उपभोक्ताओं की तादाद मिलाकर करोड़ो में है।''(1)

इस रीमिक्स संस्कृति से एक समय में हिन्दी सिनेमा के फिल्मकार काफी परेशान हो गए थे, जिन पुराने गीतकारों के गीत पर ये रीमिक्स गीत आधारित होते थे, उनके लिए अपनी मौलिकता को सुरक्षित रखना अत्यंत कठिन प्रश्न बन गया था। भले ही खुले रुप में इन गीतों की निंदा की जाती रही हो फिर भी ये गीत, बाजार की माँग बने रहे। रीमिक्स का यह बाजार बेरोजगारों के लिए नवीन अवसर लेकर आया और इसकी बदौलत कई लोग रातों–रात प्रसिद्ध हो गए। इसका प्रमुख कारण यह होता है कि म्यूजिक अरेंजर, किसी पुराने प्रसिद्ध गीत के ट्रैक को लेकर उसमें कुछ टेक्नो बीट्स डालते है, आवाज किसी नए कलाकार की ले ली जाती है और उसमें लटके–झटके के लिए किसी लड़की को ले लिया जाता है और कुछ नये तरह का मसालेदार वीडियो बनाकर बाजार और दर्शकों के समक्ष परोस दिया जाता है। रीमिक्स बनाने का मूल उद्देश्य, कम श्रम और कम लागत में खूब पैसा कमाना होता है परन्तु कुछ लोग अपनी राय कुछ और ही देते है।

''पुराने गानों को नये अंदाज में पेश करने से मौजूदा पीढ़ी को कई पुराने गानों से परिचित कराया जा सकता है। हो सकता है कि अपने मौलिक रुप में रहते हुए वह गाना नई पीढ़ी को ज्यादा आकर्षित न कर रहा हो। इसके अलावा रीमिक्स बनाने से पुराने गानों में स्टीरियो और सराउण्ड साउंड जैसी आधुनिक तकनीक डाली जा सकती है, जो पुराने जमाने में उपलब्ध नहीं होती थी। किसी खास रेडियो फॉर्मेट में ढालने के लिए भी गानों का रीमिक्स वर्जन बनाया जाता है। कलात्मक इस्तेमाल के लिए भी गानों का रीमिक्स बनाया जाता है।''(2)

शोधछात्रा (हिन्दी विभाग), इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (उत्तरप्रदेश)

रीमिक्स गीतों की अतिवादिता ही उसे ले डूबी, इन गीतों के वीडियो की अश्लीलता और भद्दे डांस, समाज के एक विशेष आयु वर्ग को अवश्य आकर्षित करने में सफल रहे परन्तु समाज का बुद्धिजीवी वर्ग, इन गीतों से मुँह बिदकाने लगे। फिल्मी दुनिया के भी सजग लोग इसके विरोध में आवाज उठाने लगे विशेषकर उन संगीतकारों के स्वर अधिक विरोधी हुए जिनके गीतों पर रीमिक्स बनते थे। इन संगीतकारों की मूल आपत्ति यह थी कि इन नए गीतों में भूले से भी पुराने संगीतकारों, गीतकारों और पार्श्व गायकों का जिक्र नहीं होता था। उनकी यह आपत्ति उचित भी थी कि उन्होंने कितने कठिन परिश्रम और समय लगाकर एक नवीन और मौलिक सृजन किया था और कुछ लोग मात्र नई पीढ़ी को पुराने गीतों से परिचय कराने के नाम पर उनके सर्जन प्रतिमा से खिलवाड़ करके मोटी कमाई कर रहे है। कुछ संगीतकारों ने तो इस पर कॉपीराइट कानून में परिवर्तन की माँग भी की।

''पुराने गीतों के रीमिक्स वर्जन को काफी अश्लील तरीके से फिल्माया जाता है। सबसे बुरी बात यह है कि इन गानों में मौलिक रचनाकारों के नाम का भी कोई उल्लेख नहीं किया जाता। हम चाहते हैं कि कॉपीराइट कानून के उस हिस्से में बदलाव किया जाए जिसके अनुसार किसी भी गाने के रिलीज के दो साल बाद उसे फिर से रिकॉर्ड किया जा सकता है।''[3]

इस समय सिने–संगीत संसार में गीतों के नाम पर मात्र कोलाहल था, तानसेन नही अपितु कानसेन गायक तैयार होते थे। फिल्म व दुनिया में जो भी चल पड़ता है, उसी को दर्शकों के सामने परोसने की प्रतिस्पर्द्धा शुरु हो जाती है। गायकों को पता ही नहीं लगता कि कब उन्हीं के गीतों पर नए गायकों की आवाज में गीत बाजार में बेचे जा रहे है। हिन्दुस्तान संस्कृति को जीवित रखने का उत्तरदायित्व सभी के कंधों पर है। पुराने गीतों का रीमिक्स बनाकर उन्हें जीवित नहीं किया जा सकता है, बल्कि उनको जीवित करने के नाम पर उनकी अर्थी निकाली जा रही है, इससे इन गीतों की मौलिकता पर असर पड़ता है। कुछ प्रसिद्ध फिल्मी गीतों पर निर्मित रीमिक्स गीत निम्न है– 'हम तुम्हें चाहते है ऐसे' (बहार 1951), 'जरुरत है' (मनमौजी 1962), 'होठों पे ऐसी बात'(ज्वैल थीफ 1967), 'मैं चली' (पड़ोसन 1968), 'कजरा मोहब्बत वाला (किस्मत 1968), 'बिंदिया चमकेगी' (दो रास्ते 1969), 'चढ़ती जवानी मेरी' (कारवॉ 1971), 'नहीं नहीं, अभी नहीं' (जवानी दीवानी 1972), 'कोई सहरी बाबू' (लोफर 1973), 'बाँहों में चले आओ' (अनामिका 1973), 'हम बेवफा हरगिज न थे' (शालीमार 1973) 'परदेसिया–परदेसिया' (मिस्टर नटवरलाल 1979), 'हम तुम्हे चाहते है ऐसे' (कुर्बानी 1980), 'थोड़ा रेशम लगता है' (ज्योति 1981), 'रात बाकी, बात बाकी' (नमक हलाल 1982), 'बिन तेरे सनम' (यारा दिलदारा 1991)।

जावेद अख्तर रीमिक्स गीतों के विषय में कहते है, ''मुझे रीमिक्स गाने पसन्द नहीं है। हालाँकि यह एक लोकतांत्रिक समाज है, इसलिए यहाँ किसी को कुछ भी करने की आजादी है। पर मेरा मानना है कि पुरानी चीजों के वैसा ही रहने दें जैसी वे है और नई चीजें बनाएँ। पुरानी चीजों को नया करने की क्या जरुरत है ? मुझे यह पसंद नही है।''[4]

आशा भोंसले जी भी एक साक्षात्कार में रीमिक्स गीतों के चलन से संगीत की अंतर्आत्मा लुप्त हो जाने की बात कहती है, ''रीमिक्स से गीतों की महक खत्म हो जाती है। बेतुकी तुकबंदियो से संगीत की आत्मा कहीं गुम हो रही है। इनके शोर तले गीतों की असली महक और पहचान दब जाती है।''[5] कुछ फिल्मी समीक्षकों का मानना है कि 21वीं शताब्दी में हिन्दी सिने–गीतों में एक सुधारात्मक परिवर्तन दिखाई देता है। जहाँ नब्बे के दशके आस–पास द्विअर्थी और अश्लील गीत परोसे जा रहे थे वहीं 21वीं शताब्दी के प्रारम्भ में इनकी संख्या में कमी आई और पुराने जमाने के गीतों की भाँति पुनः अर्थयुक्त गीतों की सृष्टि की जाने लगी।

''चाहे जितना हो हल्ला होता रहे, लेकिन मैं बताना चाहता हूँ कि आज के हिन्दी सिनेमा में ऐसे गीत भी बन रहे है, जो हमें अंदर तक छूते है। फिल्म 'तारे जमीन पर' में प्रसून जोशी का 'मैं कभी बतलाता नहीं, पर अंधेरे से डरता हूँ मैं माँ ....., गीत सुनकर रुलाई छूट पड़ती है। फिल्म 'थ्री इडियट्स' में स्वानंद किरकिरे का 'बहती हवा–सा था वो.....' , 'लगान' में जावेद अख्तर का 'घनन घनन घन घिर आए बदरा' और 'रिफ्यूजी' में 'पंछी, नदियाँ, पवन के झोंके– कोई सरहद न इन्हें रोकें....., ऐसे गीत है, जो निश्चित रुप से पुरानी पीढ़ी के उन लोगों को भी पसंद आये होंगे, जिनके लिए गानों का अर्थपूर्ण होना ही सबसे बड़ी कसौटी है।''[6] कुल मिलाकर, हिन्दी सिनेमा में समय दर समय होने परिवर्तनों का खुले ह्रदय से स्वागत करना चाहिए, ऐसा केवल इसलिए नहीं कि यह आज 'पापुलर कल्चर' का अंग है अपितु इसलिए भी कि इन्हीं निरंतर होने वाले परिवर्तनों में हमारे भविष्य का 'क्लासिक हिन्दी सिनेमा' छिपा है जिसमें कोई करोड़ों–अरबों की लागत नहीं, न ही यह विदेशों में फिल्माई गई फिल्में है। यह हिन्दुस्तान का सहज कलात्मक लोकप्रिय हिन्दी सिनेमा है जिसने हिन्दुस्तानी सिनेमा की भाषा को ही परिवर्तित कर दिया है। श्याम बेनेगल इस बारे में कहते है, ''हिन्दी सिनेमा के संगीत के क्षेत्र में काफी बदलाव आए है। आज का युवा वर्ग गाने सुनता कम है, उन पर थिरकता ज्यादा है। गीत के बोल से ज्यादा संगीत को तरजीह दी जाती है। ए.आर. रहमान जैसे काबिल संगीतकार भी इस बात पर ध्यान दे रहे हैं। मेरी फिल्म 'जुबैदा' में रहमान ने बिल्कुल अलग संगीत दिया था जिसमें ठुमरी थी।''[7]

भारतीय जीवन के कण–कण में संगीत व्याप्त है और यह संगीत मानव मन को आह्लादित करते हुए नवीन सृजन की निरंतर प्रेरणा देता है। संगीत के बिना तो हिन्दी सिनेमा की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। चूँकि परिवर्तन सृष्टि का शाश्वत् नियम है और हमें आगे बढ़कर इन परिवर्तनों को स्वीकार भी करना चाहिए बशर्ते वह परिवर्तन सार्थक, रचनात्मक और समाज हितोन्मुखी हो।

संदर्भ :

(1) Illegitimate Media- Ebigel Dereko, Illinois, USA. (2) www.wikipedia.org (3) खैय्याम, बीबीसी का एक साक्षात्कार, जुलाई 2003. (4) जावेद अख्तर, नव. 2012 IBN Live TV के एक साक्षात्कार में। (5) आशा भोंसले, जु0 2012, वन इंडिया डॉट इन वेब–पोर्टल के साथ एक साक्षात्मकार में। (6) यूनुस खान, अक्टूबर 2012, समसामयिक सृजन पत्रिका। (7) श्याम बेनेगल, 13 मई 2012, 'अब यथार्थ के ज्यादा करीब है सिनेमा', रविवार, अमर उजाला।

❁ ❁